निर्गुण भक्ति का काव्यशास्त्र: सुन्दरदास का छन्द, अंलकार और शास्त्रीय विमर्श

अध्याय: चार

संत कवियों की परम्परा में नामदेव, कबीर, रैदास, पीपा, सेना, दादू, हरिदास आदि संतों का समय 1600 ई. के लगभग खत्म हो जाता है। हालाँकि भक्ति-काव्य की धारा 1600 ई. के बाद भी अनवरत चलती रही, जिसमें सन्तों-भक्तों की दूसरी पीढ़ियाँ और संप्रदाय सामने आए। सुन्दरदास, जिनका समय पूरी 17वीं सदी है, एक तरह से संतों की दूसरी पीढ़ी के प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथ दादू पंथ का परिचय करवाते समय दादू के बावन शिष्यों में सुन्दरदास को ही प्रमुख स्थान देते हैं। इतिहासग्रंथों द्वारा सुन्दरदास को दिया प्रमुख स्थान उनको केवल दादूपंथ में ही नहीं पूरी संतकाव्य धारा में मुख्य संत-कवि के रूप में प्रतिष्ठित करता है।¹

सुन्दरदास जैसे संत कवियों को अपनी पहली पीढ़ी के संतों-भक्तों से ही कविता, काव्य-रूप, लोक में उनकी स्वीकृति, भक्ति का स्वरूप विरासत में मिला था, जिनसे जुड़ने में सुन्दरदास की पीढ़ी गर्व का अनुभव करती थी। कबीर, दादू, हरिदास आदि संतों की एक लम्बी शिष्य परम्परा भी थी और उनके नाम पर पंथ भी चले। सुन्दरदास अपनी पहली पीढ़ी के संतों को बड़े सम्मान के साथ याद करते हैं- कोउक गोरख कौं गुरु थापत कोउक दत्त दिगम्बर आदू । कोउक कंथर कौ भरथ्थर कौ कबीर कोउ राखत नादू ।। कोउ कहै हरदास हमारै जु यौं करि ठानत बाद-बिबादू । और तो संत सबै सिर ऊपर सुन्दर कै उर है गुरु दादू ।।²

1. सुन्दरदास की कविता में छंद विमर्श

सुन्दरदास से पहले की पीढ़ी में नामदेव, कबीर, रैदास, नानक, दादू आदि जितने भी संत कवि हुए हैं, उनकी कविता मुख्यत: या तो पदों में मिलती है या साखी, दोहा, सलोक (श्लोक) आदि दो पंक्तियों के छन्दों में मिलती है। संत काव्यधारा का बड़ा हिस्सा पदों में है, जिन्हें रागों में विभाजित किया जाता है। संत-काव्य की लोकप्रियता में इन पदों का महत्वपूर्ण योगदान हैं जिन्हें अक्सर समूह-गायन, सत्संग, भजन मंडलियों में गाया जाता रहा है। जिस तरह से भक्ति-कविता का संबंध पद और साखी से है, उसी प्रकार रीति-कविता का संबंध कवित्त-सवैयों और दोहों से जोड़ा जाता है। पद और साखियाँ भक्ति-कविता को मौखिक परम्परा में चलन हेतु उपयुक्त बनाती हैं, उसी तरह कवित्त-सवैये कवि-प्रतिभा की निशानी होते हैं जो उन्हें दरबारी

संदर्भ - जहाँ कवि-प्रतिभा को बहुत आदर मिलता था - में उपयुक्त बनाते हैं। सुन्दरदास के काव्य को समग्रता में देखा जाए तो वे एक तरफ़ संत परम्परा वाले 'साखी ग्रंथ' और 'सुन्दर पदावली' लिखते हैं। वहीं रीति-कवियों में प्रसिद्ध कवित्त-सवैया शैली पर अपना 'सुन्दर-विलास' (सवैया ग्रंथ) लिखते हैं। सुन्दरदास के दूसरे छोटे-छोटे ग्रंथों में उनका छन्द और अलंकार शास्त्र का ज्ञान सर्वत्र प्रभावी दिखाई देता है। यानी सुन्दरदास रीति-काव्य धारा से भी गहरे में परिचित थे। 'काव्य-कला की रीति' पर ब्रजभाषा में ग्रंथों के निर्माण और संस्कृत से प्रभावित 'काव्य' परम्परा का जो विमर्श रीति-कवियों द्वारा 16- 17वीं सदियों में चलाया जा रहा था, उससे संवाद स्थापित करके सुन्दरदास 'काव्य' विमर्श को संतबानी लेखन के लिये प्रासंगिक बनाते हैं। वे 'काव्य-कला की रीति' को निभाते हुए भक्ति, योग, अद्वैत वेदान्त पर संत-शिक्षा के लिए जिन ग्रंथों का निर्माण करते हैं, उत्तर भारत में विद्यमान उन ग्रंथों की पांडुलिपियों की अपार संख्या यह बताती हैं कि समकालीन संत-समुदायों और दरबारों में सुन्दरदास की कविता को बहुत प्रतिष्ठा मिली हुई थी।

इस अध्याय में विचार किया जाएगा कि रीति-कवियों से संवाद करते हुए तथा संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा से ग्रहण करते हुए भी सुन्दरदास कैसे संतबानी को रीति-परम्परा से अलग करते हैं। रीति-कवियों के 'नायिका भेद' और 'शृंगारिकता' जैसे विषयों पर सुन्दरदास 'वचन विवेक' (यानी कविता किन विषयों पर और कैसे की जानी चाहिये) प्रस्तुत करते हैं। जब हम सुन्दरदास के 'सवैया' और 'साखी' ग्रंथों में संगृहीत 'वचन विवेक' अंगों का केशवदास के रीति-ग्रथों ('कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया') से 'अन्तर्पाठ (Intertextual reading) करेंगे, तब ये बिन्दु और स्पष्ट होंगे। इस अध्याय में यह चर्चा भी की जाएगी कि सुन्दरदास कैसे रीति-ग्रंथों की शैली अपनाकर संतों के लिये 'ज्ञान समुद्र' (1653 ई.) के रूप में 'भक्ति का रीतिग्रंथ' लिखते हैं, जो आरम्भिक आधुनिक काल में बहुपठित, बहुचर्चित था।

काव्यशास्त्र के प्रधान विषयों - जैसे छन्दों की महत्ता व उनके प्रकार - पर कविता लिखते समय सुन्दरदास संत-काव्य में विद्यमान व्यंग्य के पुट को नहीं छोड़ते। एक तरफ़ वे यह व्यवस्था देते हैं कि संतबानी को छन्दों की दृष्टि से शुद्ध होना चाहिए; गण, मात्रा और अक्षर खंडित नहीं होने चाहिए जिससे वे श्रोताओं को कर्णप्रिय लगे। वहीं दूसरी तरफ़ कविता करने का उद्देश्य 'भक्ति' या 'हरिजस' निर्धारित करते हैं –

> नख शिख शुद्ध कवित्त पढ़त अति नीकौ लग्गै । अंग हीन जो पढ़ै सुनत कवि जन उठि भग्गै ।।

अक्षर घटि बढ़ि होइ खुड़ावत नर ज्यौं चल्लै । मात घटै बढ़ि कोइ मनौ मतवारौ हल्लै । । औढेर कांण सो तुक अमिल, अर्थहीन अंधो यथा । कहि सुन्दर हरिजस जीव है, हरिजस बिन मृतकहि तथा ।³

उपर्युक्त पद के अनुसार काव्यांगों से शुद्ध कविता कवि-जनों को प्रिय लगती है, अक्षरों का संयोजन बिगड़ने से काव्य लंगड़ाता हुआ चलता है और मात्रा के बिखराव से काव्य मतवाले हाथी की तरह कविता के नियमों को तोड़ता हुआ चलता है और सुनने वाले में कोई भावोन्मेष नहीं करता। अर्थ के बिना तो कविता अन्धी है लेकिन अगर कविता का प्रधान विषय 'हरिजस' या 'भक्ति' न हो तो कविता निर्जीव है। जिस रूपक से सुन्दरदास ने यहाँ काव्य की तुलना मानव शरीर से की है, वैसा रूपक संस्कृत काव्य परम्परा में प्रसिद्ध था, जिसे एक तरफ़ रीति-कवि ग्रहण करते हैं तो दूसरी तरफ़ संतकवि सुन्दरदास भी अपने ढंग से व्याख्या कर रहे थे। आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' में उपर्युक्त बात लिखी है-

श्रुतिदुष्टापुष्टार्थत्वादय काणत्वखंजत्वादय इव, शब्दार्थद्वारेण देहद्वारेणेव⁴

(अर्थात शब्द और अर्थ में श्रुतिदोष का होना या अर्थ की पुष्टि का न होना मानव शरीर के काने और लंगड़े होने जैसा है)

ग़ौरतलब है कि सुन्दरदास जैसा ही रूपक आचार्य-कवि केशवदास भी बाँधते हैं जब वे 'सदोष कवित्त' की बात करते हैं-

छंद बिरोधी पंगु गनि, नग्न जु भूषन हीन । मृतक कहावै अर्थ बिनु, केसव सुनहु प्रवीन ।।⁵

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि कविता में उचित छन्द प्रयोग के महत्व पर केशवदास और सुन्दरदास दोनों एक ही धरातल पर खड़े हैं, लेकिन जहाँ 'जीव' या काव्य रचना के प्रमुख उद्देश्य की बात आती है तो दोनों कवियों के रास्ते अलग हो जाते हैं। केशवदास संस्कृत की तर्ज़ पर काव्य का जीव उसके 'अर्थ' को मानते हैं⁶ तो सुन्दरदास के लिये काव्य की आत्मा 'हरिजस' है। सुन्दरदास यहाँ काव्य की आत्मा को 'हरिजस' बताकर काव्य-आत्मा पर चली आ रही बहस को काव्यशास्त के रूढ़ बंधनों से मुक्त करते हैं और संतबानी के लिये काव्य-विमर्श में एक स्थान निर्धारित करते हैं। जब तक कविता उसके जीव - अर्थात हरिजस - पर लिखी जाएगी वह प्रासंगिक होगी। वे अपने तर्क को समझाने के लिए फिर से एक रूपक बाँधते हैं –

रचना करि अनेक बिधि, भलौ बनायो धाम । सुन्दर मूरति बाहरी, देवल कौंने काम ।।⁷

संतबानी के लिये बाहरी सौन्दर्य (छंद, अलंकारों) पर बल देते हुए भी सुन्दरदास उपर्युक्त साखी में यह स्पष्ट कर देते हैं कि जिस तरह से सुगढ़ और सुसज्जित मंदिर का देव-प्रतिमा के बिना कोई महत्व नहीं होता उसी तरह काव्य का प्रधान हेतु भक्ति न हो तो काव्य का कोई महत्व नहीं होता। आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हज़ारी प्रसाद द्विवेदी हालाँकि सुन्दरदास को काव्य-कला की रीति का मर्मज्ञ ज़रूर मानते थे⁸ लेकिन सुन्दरदास के काव्य-संसार में छुपे हुए काव्य-आत्मा विषयक विमर्श पर अध्येताओं की दृष्टि न के बराबर पड़ी है। संतबानी पर शोध करने वाले अक्सर संतों की विचारधारा में विद्यमान 'मधि-मार्ग' की चर्चा करते हैं, जो उनको सगुण वैष्णव भक्ति परंपरा से अलग करता है।⁹ लेकिन जो बात सुन्दरदास को संतकवियों की परम्परा में विशिष्ट बनाती है, वह उनका अपना 'मधि-मार्ग' है जिसमें सुन्दरदास काव्य

के विमर्श में हिस्सा लेकर उसे संतबानी और संतों की संवेदना के अनुकूल बनाते हैं।

(अ) 'वचन विवेक': सुन्दरदास का काव्यशास्त्रीय विमर्श

आचार्य शुक्ल संतबानी के कुछ ज़्यादा प्रशंसक नहीं थे। संतों को कवि कहने के हिमायती तो बिल्कुल ही नहीं थे फिर भी सुन्दरदास की कविता में विद्यमान काव्य-सौन्दर्य की उन्होंने बड़ी प्रशंसा की है। वे इस पर ज़ोर देते हैं कि सुन्दरदास ने काव्य-प्रतिभा सम्पन्न कवियों की तरह 'कवित्त' और 'सवैये' भी लिखे और संतकवियों के लिये रूढ़ 'साखी' और 'पदों' तक ही सीमित नहीं रहे। सुन्दरदास की कविता को शुक्ल जी ने काव्य-कला की रीति के अनुसार निर्दोष कहा है।¹⁰ 'सवैया' छन्द रीति कवियों द्वारा बहधा प्रयुक्त होता रहा, 'रीतिग्रंथों' में लक्षण- उदाहरण में उदाहरण अक्सर 'सवैया' छंद में होते थे, जो एक तरह से इस छन्द को दरबारी माहौल से जोडता है। सुन्दरदास के द्वारा 'सवैया' छन्द का संत-बानी में प्रयोग होना यह दिखाता है कि 'सवैये' दरबारी माहौल से बाहर सत्संगों आदि में भी गाये जाते थे। राजस्थान में कनफटे नाथ-योगी आज भी सुन्दरदास के सवैयों का सस्वर पाठ करते हैं और सत्संगों तथा भजन-मण्डलियों में अक्सर गाते हैं।¹¹ इन्हीं 'सवैयों' और 'साखियों' को सुन्दरदास ने अपने 'सुन्दर-विलास' तथा 'साखी ग्रंथ' में 'अंगों' के आधार पर विभाजित किया है। संतबानी को अंगों में विभाजित करने की लम्बी परम्परा रही है जो दादुपंथी संतबानी संग्रहों जैसे 'सरवंगी' और 'पंचबानी' परम्परा से शुरू होती है।¹² कुछ 'अंग' लगभग सभी कवियों के यहाँ मिल जाएँगे जैसे 'गुरु कौ अंग', 'विरह कौ अंग', 'माया कौ अंग' लेकिन सुन्दरदास के 'सवैया-ग्रंथ' और 'साखी-ग्रंथ' में उपस्थित 'वचन विवेक कौ अंग' अन्य संतबानी संग्रहों में नहीं मिलता। कालक्रमानुसार बाद के संत-भक्तों के यहाँ 'वचन-विवेक कौ अंग' ज़रूर मिलेगा जिन्हें सुन्दरदास से ही प्रभावित माना जा सकता है।¹³ इन्हीं वचन विवेक के अंगों में सुन्दरदास संतबानी को सैद्धांतिक रूप से व्याख्यायित करते हैं। रीति-कवियों जैसी शैली अपनाकर कविता के संतबानी के लक्षण भी बताते

हैं। सुन्दरदास कविता के कर्णप्रिय और ग्राह्य होने के पीछे उसके छन्द -अलंकार विधान का होना मानते हैं। वे संतों को कड़ी सलाह देते हैं कि अगर काव्यशास्त्र का उचित ज्ञान नहीं है तो कविता करने से बचना चाहिए-

> बोलिये तौ तब जब बोलिबै की सुधि होइ, न तो मुख मौंन करि चुप होइ रहिये। जोरिये ऊ तब जब जोरिबौ ऊ जांनि परै, तुक छंद अरथ अनूप जामैं लहिये। गाइये ऊ तब जब गाइबै कौ कंठ होइ, श्रवण के सुनत ही मन जाइ गहिये। तुक भंग छन्द भंग अरथ न मिलै कछु, सुन्दर कहत ऐसी बानि नहिं कहिये।।¹⁴

इस बात को कुछ लोक-प्रचलित प्रतीकों द्वारा सुन्दरदास और स्पष्ट करते हैं कि कविता करने की कला को जानने वाले कवि वैसे ही होते हैं जैसे किसी योग्य घुड़सवार को तुर्की और ताज़िकिस्तान के घोड़ों की क़िस्मों और टट्टुओं के बीच के अंतर का पता होता है-

सुन्दर घर ताज़ी बंधे, तुरकिन की घुरसाल । ताकै आगे आइ के, टटुवा फैरे बाल ।।¹⁵

सुन्दरदास ने संतबानी को सैद्धान्तिक रूप से व्याख्यायित भी किया है। अपने 'साखी ग्रंथ' में वे बानी के तीन रूप दिखाते हैं-

> सुन्दर वचन सु त्रिबिध हैं, उत्तम मध्य कनिष्ठ । एक कटुक एक चरपरै, एक वचन अति मिष्ठ ।।¹⁶

सुन्दरदास यहाँ संस्कृत काव्य में विद्यमान तीन तरह के काव्यों से प्रेरणा ग्रहण करते प्रतीत होते हैं¹⁷, लेकिन वे इन तीन तरह की बानियों को अपनी समकालीन काव्य-धाराओं से जोड़ देते हैं-

> एक बांणी रूपवंत भूषण बषन अंग, अधिक बिराजमान कहियत ऐसी है। एक बांणी फाटे टूटे अंबर उढ़ाये आंनि, ताहू मांहि बिपरीति सुनियत तैसी है। एक बांणी मृतकहि बहुत सिंगार किये, लोकनि को नीकी लगै संतनि को भै सी है। सुन्दर कहत बाणीं त्रिबिध जगत मांहि, जानै कोऊ चतुर प्रबीन जाकै जैसी है।।

सुन्दरदास कहते हैं कि छंदों और अलंकारों से सजी कविता सुनने वालों को सदैव प्रिय लगती है। दूसरी तरह की कविता वह होती है जिसमें छन्द विधान टूटा हुआ होता है और वह मानव के हित की बात नहीं करती है। एक तीसरे प्रकार की कविता भी होती है जो केवल शृंगार की बात करती है। यह तीसरे प्रकार की कविता लोगों को भले ही अच्छी लगे लेकिन संत तो इससे दूर ही भागते हैं। इस तीसरे प्रकार की कविता से सुन्दरदास का इशारा रीति-कविता की तरफ़ ही था। क्योंकि केशवदास अपने रीतिग्रंथों में यह व्यवस्था देते हैं कि-

जदपि सुजाति सुलच्छनि, सुबरन सरस, सुवृत्त । भूषन बिनु न बिराजहीं, कविता बनिता मित्त ।।¹⁹

कविता की बनिता (स्त्री) के साथ तुलना करते हुए सुन्दरदास और केशवदास दोनों समान ही बात कह रहे हैं। लेकिन जहाँ केशवदास आभूषण या शृंगार को बहुत महत्व देते हैं वहीं सुन्दरदास अत्यधिक शृंगार रस वाली कविता को संत-समुदाय के

लिये अप्रासंगिक क़रार दे देते हैं। सुंदरदास इस शृंगारिकता प्रधान कविता की तरफ़ बढ़ रहे लोक-रूझान से संतों, आम लोगों को सचेत करके उन्हें संतकविता की तरफ़ मुड़ने की सलाह भी देते हैं।

संतबानी को काव्य कला की रीति का अनुसरण करते हुए लिखना एक बड़ा कारण था जिससे सुन्दरदास को समकालीन संत-संप्रदायों, पंथों में बहुत पढ़ा जाता था। इनके ग्रंथों को पढ़ने से एक तरफ़ संतों की पहुँच शास्त्रीय ज्ञान तक होती थी जिन पर संस्कृत का एकाधिकार था वहीं दूसरी तरफ़ वे काव्य-कला की रीति से भी परिचित होते थे। सुन्दरदास का अपने समकालीन रीति-काव्य से भी परिचय था और दरबारों में उसकी लोकप्रियता से भी वे परिचित थे। इसीलिए वे नायिका-भेद आदि विषयों में कवियों की बढ़ती दिलचस्पी को लक्षित करके, उनके 'कुप्रभाव' को बतलाकर दूसरे विषयों पर कविता करने की प्रेरणा देते हैं। सुन्दरदास चतुराई से रीति कवियों के 'नायिका भेद' को संतकवियों के 'नारी निंदा' वाले विषय से जोड़ते हैं जिसमें नारी को माया बताकर साधना के मार्ग में बाधक माना जाता है-

> रसिकप्रिया रसमंजरी और सिंगार हि जांनि । चतुराई करि बहुत विधि विषैं बनाई आंनि ।। विषै बनाई आंनि लगत विषयन कौं प्यारी । जागै मदन प्रचण्ड सराहैं नख शिख नारी ।। ज्यौं रोगी मिष्ठान खाइ रोगहि बिस्तारै । सुन्दर यह गति होइ जु तौ रसिक प्रिया धारे ।।²⁰

यहाँ रसिकप्रिया, रसमंजरी और शृंगार शब्दों में श्लेष दृष्टव्य है। एक ओर सुन्दरदास केशवदास की 'रसिकप्रिया', भानुदत्त की 'रसमंजरी' और सुन्दर कविराय के 'सुन्दरशृंगार' जैसे आचार्यत्व वाले ग्रंथों की आलोचना करते हैं वहीं दूसरी ओर नारी को 'रसिक-प्रिया' और शृंगारी मानकर साधना के मार्ग में बाधक क़रार देते हैं। अपने संत-

समुदाय को सुन्दरदास सचेत करते हैं कि ज़्यादा नख-शिख सुनना काम-वासना को ही बढ़ाता है। सुन्दरदास के द्वारा रीति-कविता के जिस शृंगारिक पक्ष की आलोचना हुई वह बाद के संत संप्रदायों में भी पाई जाती है। गुजरात के स्वामिनारायण संप्रदाय के अष्टकवियों मे से एक मुक्तानंद (18-19वीं सदी) भी सुन्दरदास के 'वचन-विवेक' की तर्ज़ पर अपना ग्रंथ 'विवेक चिंतामणि' लिखते हैं। वे भी केशवदास के 'रसिकप्रिया' और संस्कृत के 'रसमंजरी' के शृंगारी पक्ष की घोर निंदा करते हैं।²¹ उसी तरह राजस्थान के ही निरंजनी संप्रदाय के हरिरामदास निरंजनी (18वीं सदी) - जिन्होंने छंद-अलंकारों पर एक रीतिग्रंथ 'छन्दरत्नावली' (रचनाकाल 1738 ई.) लिखा - भी केशवदास की कविता के शृंगारिक पक्ष की आलोचना करते हैं जिस पर सुन्दरदास की छाया दिखती है-

> केसोदास शृंगार के रचे ग्रंथ अदभूत । नवगुनधर उन गुनन तैं अंति भयो सो भूत । अंति भयो सो भूत, कौंन जिहि निर्गुण गायो । जाति जुलाह कबीर, सुक्ति सैं देह सिधायो । सोही काव्य सुकाव्य, नाहि इस माहि अंदेसो । कामादिक को त्याग, बरणि बरणै जह केसो ।²²

इस पद में हरिरामदास निरंजनी केशवदास को शृंगारीकाव्य की रचना करने से

भूत-योनि को प्राप्त हुआ बताते हैं और कबीर की कविता को सुकाव्य कहते हैं। शृंगार की तरह रीति-ग्रंथों में नायिका का 'नख-शिख वर्णन' भी एक मुख्य विषय रहा है। सुन्दरदास जहाँ 'नख-शिख शुद्ध कवित्त' की बात करते हैं तो उनका तात्पर्य केशव, बिहारी की नायिकाओं के नख-शिख वर्णन से नहीं है, वरन् ऐसी कविता से है जो काव्यांगों से सजी हो। सुन्दरदास नख-शिख के मुहावरे को अपनी

कविता में बदल देते हैं। वे ऐसे गुरु पर मोहित होते हैं जिनमें नख-शिख ज्ञान भरा है। उनके 'गुरु सम्प्रदाय' ग्रंथ में अपनी गुरु परम्परा को वे स्वयं 'शिख' से शुरू करके 'परब्रह्म' नख' तक 'प्रतिलोम प्रनाली' के द्वारा ले जाते हैं-

> परम्परा परब्रह्म तें , आयौ चलि उपदेश । सुन्दर गुरु तें पाइये , गुरु बिन लहै न लैश । । सम्प्रदाय इहिं बिधि चली , प्रगट करी जगदीश । सुन्दर सिर तें नख गनहिं , नख तें गनिये शीश । ।²³

यहाँ परब्रह्म, गुरु और स्वयं का 'शिख' से 'नख' फिर 'नख' से 'शिख' जोड़ना इस बात का संकेत करता है कि सुन्दरदास उस काव्यशास्त्रीय परम्परा से परिचित जिसमें 'अनुलोम' और 'प्रतिलोम' प्रणालियों में नख-शिख वर्णन को विधिवत रूप से व्याख्यायित किया जाता था। रीति कवियों ने नख-शिख वर्णन पर 'अनुलोम' और 'प्रतिलोम' प्रणालियों में कविता भी की हैं। केशवदास की 'कविप्रिया' के अनुसार 'अनुलोम' प्रणाली में देवी के 'नख' से 'शिख' का वर्णन होता है और 'प्रतिलोम' प्रणाली में नायिकाओं का 'शिख' से 'नख' वर्णन होता है-

नख तैं सिख लौं बरनियै, देवी दीपति देखि । सिख तैं नख लौं मानुषी, 'केसवदास' विसेषि ।।²⁴

सुन्दरदास अपने संप्रदाय का नख-शिख वर्णन करके पूरे मुहावरे को ही बदल देते हैं। लेकिन सुन्दरदास केवल रीतिग्रंथों के इन विषयों की आलोचना, इनका नकार या इन विषयों में भक्ति की प्रतिष्ठा करके ही संतुष्ट नहीं रहते। वे संत-समुदाय की शिक्षा या अभिरुचि को नई दिशा की तरफ़ मोड़ते भी हैं। संत शिक्षा के लिये रीतिग्रंथों की लक्षण-उदाहरण वाली शैली अपनाते हुए, विविध छन्दों में गुरु के लक्षण, भक्ति के प्रकार, योग, सांख्य और अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों को ब्रजभाषा में समझाते हुए 'ज्ञान

समुद्र' जैसा पांडित्यपूर्ण शास्त्रीय ग्रंथ लिखते हैं जिसे 'भक्ति का रीतिग्रंथ'²⁵ कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

(ब) <u>'ज्ञान समुद्र' और रीतिग्रंथ विधा पर पुनर्विचार:</u>

संस्कृत काव्यशास्तीय परम्परा को अपना उपजीव्य मानते हुए रीतिग्रंथ लक्षण-उदाहरण शैली अपनाते हुए, ब्रजभाषा के साथ अन्य-भाषाओं (देशभाषा, संस्कृत व फ़ारसी) के शब्दों को अपनाते हुए काव्यशास्त्रीय अंगों को समझाते हैं। ये ग्रंथ कवि शिक्षा के साथ-साथ, राजपरिवार के सदस्यों की शिक्षा के लिए भी लिखे जाते थे। सुन्दरदास के 'ज्ञान समुद्र' की ब्रजभाषा के रीतिग्रंथों से तुलना करें तो हमें कई समान पहलू मिलेंगे। सांग-रूपक का निर्वाह करते हुए सुन्दरदास इस ज्ञान रूपी समुद्र के पाँच उल्लास बताते हैं।²⁶ ये पाँच उल्लास हैं - गुरु, भक्ति, योग, सांख्य और अद्वैत वेदान्त। दिलचस्प बात यह है कि हर सैद्धान्तिक बात को कहने के लिए सुन्दरदास नये छन्द का प्रयोग करते हैं। ये छन्द इस ज्ञान रूपी समुद्र की सीपियाँ हैं। इन ज्ञान रूपी सीपियों में छिपे हुए अर्थ मोती हैं और सच्चे ज्ञान के साधक रूपी गोताखोर ही इस 'ज्ञान समुद्र' में अवगाहन कर सकते हैं-

जाति जिती सब छंदन की बहु सीप भई इहिं सागर माहीं ।

- है तिन में मुक्ताफल अर्थ लहैं उनकौं हितसौं अवगाहीं ।। सुन्दर पैठि सकै नहीं जीवत दै डुबकी मरिजीवहि जाहीं ।
- जे नर जान कहावत हैं अति गर्व भरे तिनकी गमि नाहीं । 127

छन्दों को सीपी और अर्थ को मोती की उपमा तुलसीदास ने भी दी हैं²⁸ लेकिन यहाँ सुन्दरदास का उद्देश्य स्पष्ट है- सांख्य, योग आदि के ज्ञान के साथ पाठकों को विविध प्रकार के छन्दों का भी ज्ञान करवाना। इस ग्रंथ में करीब 34 प्रकार के छन्दों का प्रयोग मिलता है। 'जाति जिती सब छन्दन की' से सुन्दरदास का तात्पर्य संस्कृत,

प्राकृत और देशभाषा की छन्द परम्पराओं से हैं, जो सभी 'ज्ञान समुद्र' में मिलते हैं। छन्दशास्त्र पर रीति कवियों की तरह स्वतन्त्र रीतिग्रंथ लिखना सुन्दरदास का अभीष्ट नहीं था। लेकिन वे छन्दों पर अपने आचार्यत्व के होने को ज़रूर सिद्ध करते हैं। 'ज्ञान समुद्र' की शुरूआत में पांडित्यपूर्ण ढंग से पिंगल को याद करते हैं। पिंगल को परम्परा से छन्दों पर स्वतन्त्र ग्रंथ (पिंगल-सूत्र) लिखने वाला आचार्य माना जाता रहा है। अगर छन्दशास्त्र पर ग्रंथ लिखा जा रहा हो तो मंगलाचरण में पिंगलाचार्य को याद करना शुभ माना जाता है।²⁹ सुन्दरदास अपने ग्रंथ की शुरूआत इस तरह करते हैं-

प्रथम वंदि परब्रह्म.....दुतिय बन्दि गुरुदेव³⁰

यहाँ 'प्रथम' शब्द 'न-गण' है। केशवदास ने कविप्रिया में 'न-गण' का देवता नाग अर्थात पिंगल को बताया गया है-

मही देवता मगण की, नाग न-गण को देखि।³¹

छन्दशास्त्र पर ब्रजभाषा का पहला रीतिग्रंथ केशवदास का 'छन्दमाला' (1602 ई.) भी 'न-गण' से ही शुरू होता है-

विघन गन विनासै, बुद्धिदाता सदा है.....। 32

केशवदास पिंगलाचार्य की स्वतंत्र वंदना करते हैं। साथ ही साथ विघन शब्द जो एक 'न-गण' है के साथ भाषा के छन्दों का परिचय भी शुरू करते हैं। केशवदास जहाँ पिंगल के साथ गणेश की वंदना करते हैं वहीं सुन्दरदास संत संवेदना के अनुसार पिंगल के साथ गुरु और परब्रह्म की वंदना करते हैं।

रीतिग्रंथ जहाँ लक्षण-उदाहरण के माध्यम से छन्द, अलंकार, नव-रस, बारह मास और नायिका भेद आदि का वर्णन करते हैं वहीं सुन्दरदास के इस रीतिग्रंथ में संस्कृत के ही भगवत्-गीता, भागवत्-पुराण, अध्यात्म-रामायण, हठ-प्रदीपिका और

उपनिषद् आदि उपजीव्य बन जाते हैं। शैली वही रीति-ग्रंथों वाली लक्षण-उदाहरण की और भाषा भी साहित्यिक ब्रज रहती हैं। सुन्दरदास एक तरह से संत शिक्षा के लिये यह रीतिग्रंथ बनाते हैं। वे गुरु-लक्षण निम्न तरीके से देते हैं-

अथ गुरु लक्षण-

सदा प्रसन्न सुभाव प्रगट सर्वोपरि राजय । <u>तृप्त ज्ञान विज्ञान अचल कूटस्थ बिराजय</u> ।। सुख निधान सर्वज्ञ मान अपमान न जानै । सारासार विवेक सकल मिथ्या भ्रम मानै ।। <u>पुनि भिद्यन्ते हृदि ग्रंथि कौं छिद्यन्ते सब संशयं</u> । कहि सुन्दर सो सद् गुरु सही चिदानंदघन चिन्मयं ।।³³

उपर्युक्त पद में दूसरी पंक्ति भगवत्-गीता के ही एक श्लोक का ब्रज अनुवाद है। अन्तर यह है कि गीता में जो लक्षण योगी के बताए हैं, सुन्दरदास उन्हीं लक्षणों को गुरु के बताते हैं। उपर्युक्त पद के सन्दर्भ में गीता का निम्न श्लोक दृष्टव्य है-

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रिय । युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्ठाश्मकांचनम । 1³⁴

सुन्दरदास के गुरु-लक्षण वाले पद की पाँचवीं पंक्ति में सुन्दरदास मुंडक उपनिषद् के मशहूर वाक्य का ब्रज अनुवाद करते हैं जो ब्रह्म के साक्षात्कार को दर्शाता है-

भिद्यन्ते हृदि ग्रंथिश्छिद्यन्ते सर्व संशयं³⁵

उपनिषद के ब्रह्म साक्षात्कार को सुन्दरदास सच्चे गुरु के मिलन के साथ जोड़ देते हैं। इस तरह सुन्दरदास संतकवियों की शिक्षा के लिए दिये गुरु लक्षण को पारम्परिक शास्त्र ज्ञान द्वारा समर्थित करवाते हैं और शास्त्र ज्ञान की परम्परा को संतों की विचारधारा के अनुसार व्याख्यायित भी करते हैं।³⁶ आगे सुन्दरदास जब 'परा- भक्ति' को 'नवधा' और 'प्रेमालक्षणा' से 'उत्तम' बताते हैं तब लगता है कि वे संतों की तरह की निर्गुण भक्ति की अन्य परम्पराओं पर प्रतिष्ठा करवाते हैं-

सेवक सेव्य मिल्यौ रस पीवत भिन्न नहीं अरु भिन्न सदा हीं । ज्यौं जल बीच धर्यौं जल पिंड सु पिंड रु नीर जुदे कछु नांहीं ।। ज्यौं दृग मैं पुतरी दृग येक नहीं कछु भिन्नसु भिन्न दिखाहीं । सुन्दर सेवक भाव सदा यह भक्ति परा परमातम माहीं ।।³⁷

'ज्ञान समुद्र' के शुरूआती अध्यायों में 'गुरु शिष्य लक्षण' और 'भक्ति' को समझाने के बाद सुन्दरदास 'योग', 'सांख्य' और 'अद्वैत वेदान्त' के तकनीकी पक्षों पर कविता लिखते हैं। सांख्य और अद्वैत वेदान्त पर कविता करते समय वे संस्कृत में लिखित शास्त्रज्ञान का सहारा लेते हैं। तत्त्वमीमांसा और दर्शन से समाविष्ट उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ-ब्रज हो जाती है। ठीक उसी तरह जैसे रीतिग्रंथ काव्यशास्त्र के तकनीकी पक्ष को व्याख्यायित करते समय संस्कृतनिष्ठ हो जाते हैं-

अथ तुर्य्यावस्था कथ्यते-

चर्पट – तुर्यावस्था चेतन तत्वं । स्व स्वरूप अभिमानीयत्वं । परमानन्दं भोगं कहियं । सोहं देव सदा तहं लहियं । । सर्बोपाधि बिबर्जित मुक्तं । त्रिगुणातीतं साक्षी उक्तं । मूर्द्धनि स्थिति परा पुनि बांणीं । तुर्यावस्था निश्चय जांणीं । ।³⁸

'ज्ञान समुद्र' के 'योग' वाले अध्याय में विभिन्न आसनों को करने की विधि सुन्दरदास ने बड़ी सक्षमता के साथ कई छन्दों में दर्शाई है-

अथ पद्मासन-

छप्पय- दक्षिण उरु उप्परय प्रथम बांमहिं पग आनय । बांमहि उरु उप्परय तबहिं दक्षिण पग ठानय ।। दोऊ कर पुनि फेरि पृष्टि पीछै करि आवय । दृढ़ कै ग्रहै अंगुष्ठ चिबुक बक्षस्थल लावय ।।

इहिं भांति दृष्टि उन्मेष करि अग्र नासिका राखिये । सब ब्याधि हरण योगीन की पद्मासन यह भाषिये ।।³⁹

वे इस अध्याय के शुरू में ही कह देते हैं कि योग संबंधी वर्णन में स्वत्वराम लिखित संस्कृत की 'हठ प्रदीपिका' उनका उपजीव्य रही है-

ये दश प्रकार के यम कहे हठ प्रदीपिका ग्रंथ महिं। सो पहिलै ही इनकौं ग्रहै चलत योग के पंथ महिं।।

जिस तरह से सुन्दरदास स्वत्वराम की 'हठ प्रदीपिका' का महत्व गिना रहे थे उसी प्रकार रामानंदी सम्प्रदाय के जयतराम ने भी स्वत्वराम की 'हठ प्रदीपिका' को उपजीव्य बनाकर वृंदावन में 'जोग प्रदीपिका' (रचनाकाल 1718 ई.) ग्रंथ लिखा। जयतराम, कृष्णदास पयोहारी के शिष्य थे जिन्होंने गलता में रामानंदी संप्रदाय की नींव डाली थी।⁴¹ सुन्दरदास जैसे संत और जैतराम जैसे रामानंदी दोनों हमें उस युग में हठयोग के भक्ति-समुदायों में लोकप्रिय होने का उदाहरण देते हैं।

शास्त्र आधारित ज्ञान का संतकवियों की संवेदना के अनुसार जिस तरह से उपयोग सुन्दरदास ने किया और साहित्यिक ब्रजभाषा तथा विविध छन्दों के माध्यम से उसका जो प्रस्तुतीकरण हुआ, उससे 'ज्ञान समुद्र' आरम्भिक आधुनिक काल (या मध्यकाल) का कालजयी ग्रंथ बन जाता है। साहित्यिक ब्रज के प्रयोग से 'ज्ञान समुद्र' को अपनी क्षेत्रीय सीमाओं (वर्तमान राजस्थान) से बाहर गुजरात, पंजाब और उत्तर भारत में एक बड़ा पाठक वर्ग मिला। राघवदास 'ज्ञान समुद्र' की रचना (1653 ई.) के लगभग सात साल बाद अपने 'भक्तमाल' (1660 ई.) में सुन्दरदास की एक बड़े ज्ञानी के रूप में प्रतिष्ठा करवाते हैं।⁴² इसी तरह रामसनेही सम्प्रदाय के 'भक्तमाल' में काव्यकला की रीति पर सुन्दरदास की कविता को अनुकरणीय माना जाता है।⁴³ राजस्थान, उत्तर प्रदेश और गुजरात के विभिन्न संग्रंहालयों में विद्यमान 'ज्ञान समुद्र' की

बीसियों प्रतियाँ इस बात का प्रमाण है कि इस ग्रंथ को संत समुदाय और लोक के साथ दरबारों में भी प्रतिष्ठा मिली हुई थी।⁴⁴

इस ग्रंथ की लोकप्रियता की वजह से गुरुमुखी में भी इसका लिप्यान्तरण हुआ।⁴⁵ यही नहीं 1749 ई. में गुजरात के कच्छ राज्य में जब भुज में ब्रजभाषा की काव्यशाला स्थापित हुई तब ब्रजभाषा के रीतिग्रंथों के साथ-साथ 'ज्ञान समुद्र' को भी पाठ्यक्रम में शामिल किया गया।⁴⁶ ये कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिनसे पता चलता है कि सुन्दरदास ने 'ज्ञान समुद्र' के माध्यम से संतकवियों की परिपाटी से अलग जो ग्रंथ बनाया, या संत-कवियों की शिक्षा के लिये **'भक्ति का जो रीतिग्रंथ'** दिया जिससे इस ग्रंथ को एक बड़ा पाठक वर्ग मिला, और 'ज्ञान समुद्र' अपने युग की कालजयी कृति बन गया। राजस्थान के ग्रंथागारों में 'ज्ञान समुद्र' पर मिली हस्तलिखित प्रतियों की संख्या इस प्रकार है-

| ग्रंथागार | 'ज्ञान समुद्र' | समय (विक्रम | टिप्पणी |
|-------------------|----------------|------------------------|---------------------------|
| | की प्रतियाँ | संवत) | |
| विद्याभूषण ग्रंथ | तीन | सर्वाधिक प्राचीन प्रति | सर्वाधिक प्राचीन सम्पूर्ण |
| संग्रह, राजस्थान | | संवत 1742 वि० | प्रति |
| प्राच्यविद्या | | (1685ई.), दो प्रतियाँ | |
| प्रतिष्ठान, जयपुर | | 19वीं सदी वि० | |
| मानसिंह पुस्तक | एक | संवत 1830 वि. | |
| प्रकाश मेहरानगढ़ | | | |
| किला, जोधपुर | | | |
| पोथीखाना, सिटी | सात | 18 वीं सदी वि. | प्रतियों पर कुवंर |
| पैलेस जयपुर | | | अमरसिंह, हाथीसिंह पुत्र |
| | | | श्रीरामजी,श्री चांदजी और |
| | | | बादशाह ग़ाज़ी औरंगज़ेब |
| | | | की मुद्राएँ भी मिलती हैं। |

| ग्रंथागार | 'ज्ञान समुद्र' | समय (विक्रम | टिप्पणी |
|---------------------|----------------|----------------------|---------------------------|
| | की प्रतियाँ | संवत) | |
| चौपासनी शोध | दस प्रतियाँ | 18वीं, 19वीं सदी वि. | |
| संस्थान | | | |
| जोधपुर | | | |
| राजस्थान | दो प्रतियाँ | 18वीं सदी वि. | |
| प्राच्यविद्या | | | |
| प्रतिष्ठान, अलवर | | | |
| राजस्थान | एक प्रति | 19वीं सदी वि. | |
| प्राच्यविद्या | | | |
| प्रतिष्ठान, बीकानेर | | | |
| राजस्थान | एक प्रति | 18वीं सदी वि. | |
| प्राच्यविद्या | | | |
| प्रतिष्ठान, जयपुर | | | |
| राजस्थान | पूर्ण-अपूर्ण | 18वीं, 19वी सदी वि. | लिपिकर्ता में दादूपंथियों |
| प्राच्यविद्या | पचास | | के साथ कबीरपंथी भी हैं |
| प्रतिष्ठान, जोधपुर | प्रतियाँ | | |
| राजस्थान | दो प्रतियाँ | 19वीं सदी वि. | |
| प्राच्यविद्या | | | |
| प्रतिष्ठान, कोटा | | | |
| राजस्थान | तीन प्रतियाँ | 17वीं, 18वीं सदी वि. | |
| प्राच्यविद्या | | | |
| प्रतिष्ठान, उदयपुर | | | |

2. सन्त काव्य में छन्द व अलंकार विमर्श की प्रासंगिकता

सुन्दरदास ने न केवल छन्द-वैविध्य से भरी कविता की वरन् 'ज्ञान समुद्र' पर उपर्युक्त चर्चा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने सन्त-समुदाय को भक्ति का सैद्धान्तिक ग्रंथ भी दिया। सुन्दरदास की कविता में अंलकारों पर तो अध्येताओं की दृष्टि जाती रही है⁴⁷ लेकिन जो मुख्य पक्ष उपेक्षित रहा है वह है उनके द्वारा लिखित 'चित्र-काव्य' का अध्ययन जिसका संबंध सुन्दरदास के 'सवैया ग्रंथ' (सुन्दरविलास) और अन्य दार्शनिक ग्रंथों जैसे 'ज्ञान समुद्र' से भी जुड़ता है। सुन्दरदास के लिखे दस 'चित्र काव्य' हमें मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं – छत्र बंध, कमल बंध, चौकी बंध, गोमूत्रिका बंध, चौपड़ बंध, ज़ीनपोश बंध, वृक्ष बंध, सर्प बंध, हार बंध और कंकण बंध।

चित्रकाव्य को शब्दालंकारों की ही श्रेणी में माना जाता है। संस्कृत में वैदिक-काल, फिर बाद में 'क्लासिकल-एज' में काव्य-गोष्ठियों, मनोरंजन आदि के लिए भी विद्वत्जनों के बीच चित्र-काव्य का प्रयोग होता रहा है। तंत्र के विकास के साथ अक्षरों के प्रतीकात्मक प्रयोग और तांत्रिक विज्ञान में आकृतियों के चलन ने भी चित्र-काव्य पर प्रभाव डाला। भारवि का 'किरातार्जुनीयम्' (15वाँ सर्ग) और माघ का 'शिशुपालवध' (19वाँ सर्ग) चित्र-काव्य के पहले उदाहरण हैं।⁴⁸

संस्कृत काव्य परम्परा में आनंदवर्धन के ध्वनि-सिद्धान्त की स्थापना के बाद व्यंग्य या व्यंजना की प्रधानता के आधार पर काव्य के तीन भेदों को बताया गया है-उत्तम, मध्यम और अधम जिनमें 'चित्र-काव्य' को अधम-काव्य माना गया है।⁴⁹ चूंकि यह काव्य केवल चित्रों के माध्यम से शब्द और अक्षर आधारित चमत्कार पैदा करता है और किसी व्यंग्यार्थ की व्यंजना नहीं करता इसलिए उच्च काव्य नहीं माना गया है। आचार्य मम्मट ने लिखा है-

शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यंग्य त्ववरं स्मृतम्।

अर्थात व्यंग्य-अर्थ से रहित शब्दचित्र या अर्थचित्र (दो प्रकार के काव्य) को अधम काव्य कहते हैं।⁵⁰ आनन्दवर्धन अपने ध्वन्यालोक में यह व्यवस्था देते हैं-

- गुणप्रधानभावाभ्यां व्यंग्यस्यैव व्यवस्थिते ।
- काव्ये उभे ततोअन्यद्यत् तच्चित्रमभिधीयते ।।
- चित्रं शब्दार्थभेदेन द्विविधं च व्यवस्थितम् ।
- तत्र किंचिच्छब्दचित्रं वाच्यचित्रम परम् ।।

अर्थात व्यंग्य के प्रधान और गुणभाव से स्थित होने पर वे दोनों (ध्वनि और गुणीभूत-व्यंग्य) काव्य होते हैं। और उनसे भिन्न जो काव्य रह जाता है उसे चित्र के समान काव्य के तात्त्विक व्यंग्यरूप से विहीन, काव्य की प्रतिकृति के समान होने से चित्र काव्य कहते हैं। शब्द और अर्थ के भेद से चित्र काव्य दो प्रकार का होता है।⁵¹

आनन्दवर्धन ने वैसे 'चित्र काव्य' को 'तीसरी' श्रेणी में रखा है लेकिन वे स्वयं 'चित्र-काव्य' की महत्ता जानते थे और उनका 'देवीशतक' चित्र-काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण है।⁵²

संस्कृत काव्य में हालाँकि 'चित्र-काव्य' को निम्न श्रेणी का काव्य माना जाता है लेकिन प्राकारान्तर से कवि शब्द और अर्थचित्रों द्वारा काव्य में चमत्कार प्रदर्शित करता आया है। हालाँकि ब्रजभाषा के रीति कवियों ने - जो अपनी पंडिताई दिखाने के लिए साहित्येतिहास में जाने जाते हैं - कम ही चित्र काव्य लिखे हैं। ऐसे में सुन्दरदास का 'चित्र-काव्य' लिखना चौंकाता है। अगर संतों का मुख्य उद्देश्य अपने आध्यात्मिक अनुभव को आम-लोगों तक पहुँचाना था तो सुन्दरदास ने शब्दों के चमत्कार पर आधारित तथा अपनी पंडिताई प्रदर्शित करने वाले 'चित्र-काव्यों' को क्यों लिखा? सुन्दरदास के लिखे 'चित्र-काव्यों' को अगर पढ़ा जाए और जिस भाव को कहने के लिऐ सुन्दरदास ने 'चित्र-काव्य' का सहारा लिया है तो दिलचस्प बातें सामने आती हैं। सुन्दरदास द्वारा लिखित 'सर्प (नाग) बंध' को देखा जाए तो दो-तीन बातें सामने आती हैं। एक तो संतकाव्य के मुख्य-भावबोध वाली कविता को चाक्षुष रूप में पेश करना, दूसरा काव्य के सभी अंगों में भक्ति-काव्य की प्रतिष्ठा करवाना व तीसरा किसी संत के सिद्धहस्त कवि होने को प्रबलता के साथ पेश करना सुन्दरदास के चित्र-काव्य के उद्देश्य माने जा सकते हैं।

मनुष्य जन्म पाकर भगवान को स्मरण न करने की चेतावनी के पद अनेक संतकवियों ने कहे हैं। यह एक तरह से मृत्यु के बोध से जुड़ा हुआ भाव है जिसमें व्यक्ति को यह याद दिलाया जाता है कि दुनियावी जंजाल में पड़कर वह भूल गया है कि मृत्यु करीब है और इस शरीर का अंत होना है। इस तरह के भाव की कविता संत-काव्य धारा में बहुधा पाई जाती है। सुन्दरदास ने जिस तरह से इस भाव पर पद लिखा है और उसको सर्प-बंध से जोड़ा है वह चित्र-काव्य और संतों के चेतावनी पदों में नया जोड़ता है-

> जनम सिरानौ जाय भजन बिमुख सठ, काहे कौं भवन कूप बिन मीच मरि है। गहित अविद्या जांनि शुक नलिनी ज्यों मूढ़, करम विकरम करत नहिं डरि है। आपु ही तैं जात अंध नरकन बार बार, अजहू न शंक मन मांहिं अब करि है। दुख कौ समूह अवलोकि कै न त्रास होइ, सुंदर कहत नर नागपासि परि है।।⁵³

सुन्दरदास का यह 'मनहर छंद' उनके 'सवैया ग्रंथ' (सुन्दरविलास) के 'उपदेश-चितावनी कौ अंग' में आता है। एक बार पढ़ने में यह संतकाव्य के अन्य पदों जैसा लगता है, 'भवन का कूप', 'शुक- नलिनी' आदि संतकविता के ही रूपक दिखते हैं,

लेकिन 'चित्र-काव्य' में 'नाग-पाश' के द्वारा जिस ढंग से इसे दिखाया गया है उससे पढ़ने वालों पर इसके व्यंग्यार्थ के साथ-साथ चाक्षुष प्रभाव भी पड़ता है। मृत्यु के भय और यमराज के भयंकर फन्दे की जो बात संत कवि चेतावनी के पदों द्वारा करते हैं वह पाठक के सामने 'नाग-पाश' के चित्र द्वारा और यथार्थ लगता है। सुन्दरदास के 'सर्प-बंध' को उनके काव्य की प्राचीन पांडुलिपि (1685 ई.) में देखा जा सकता है-



चित्र-15: सुन्दरदास का सर्पबंध (प्राचीनतम् पांडुलिपि में)

तांत्रिक-प्रक्रिया में भी नाग-पाश प्रसिद्ध है जिसमें तांत्रिक साधक अपने प्रतिद्वन्द्वी-शत्रु को बाँध लेता है।⁵⁴ केवल 'सवैया ग्रंथ' में इस पद को पढ़ने वाले पाठकों पर वह चाक्षुष प्रभाव नहीं पड़ेगा, जो सुन्दरदास के इस 'चित्र-काव्य' को देखकर होगा। साथ-ही-साथ सुन्दरदास के लोकप्रिय 'सवैया-ग्रंथ' के साथ उनके कम पढ़े जाने वाले 'चित्र-काव्य' के संबंध को भी नहीं समझ पाएँगे। इसीलिए सुन्दरदास के काव्य को समग्रता में पढ़ना ज़रूरी है।

सुन्दरदास की भक्तिमय कविता में सांख्य, योग और अद्वैत वेदांत के दार्शनिक पहलू भी भरे हुए हैं। इसी दार्शनिक कविता—विशेषकर सांख्य दर्शन -- में 'विटप-विश्व' का रूपक बार-बार आता है, जो मुण्डकोपनिषद्, कठोपनिषद् और गीता आदि शास्तों में वर्णित है।⁵⁵ सुन्दरदास ने इस 'विटप- विश्व' रूपी दार्शिनक रूपक को 'चित्र-काव्य' से जोड़कर और रोचक बना दिया है, तथा एक अमूर्त परिकल्पना को मूर्त रूप दिया है, जिससे जन सामान्य को इस रूपक को समझने में आसानी हो। यह भाषा पर उनके अधिकार और काव्य-शास्त्र में उनकी निपुणता को दर्शाता है। सुन्दरदास ने दो 'वृक्ष-बंध' लिखे हैं, जिनमें एक उनके 'सवैया ग्रंथ' के 'मन कौ अंग' में आए 'मनहर कवित्त' पर है।⁵⁶

दूसरे वृक्ष-बंध में सुन्दरदास ने नौ दोहों में प्रकट 'विश्व रूपी वृक्ष' की 'जड़' 'माया', 'महतत्त्व' और 'अंहकार' के साथ 'त्रिगुणों' को जोड़कर इसकी पाँच 'टहनियों', उनकी 'अनंत प्रपंच' रूपी 'उपशाखाओं' और 'ज्ञानेन्द्रियों' को दिखाकर चौबीस तत्त्वों का अनुपम संसार दिखाया है। इस वृक्ष पर दो पक्षी बसते हैं, उनमें एक 'जीव' है जो 'वृक्ष' रूपी 'संसार' के 'भोग' (फलों) को खाता है, और दूसरा 'चेतन ब्रह्म' है जो 'माया' से अलिप्त रहते हुए उसे सिर्फ़ देखता है।⁵⁷ सुन्दरदास के 'वृक्ष-बंध' को उनके काव्य की प्राचीन पांडुलिपि (1685ई.) में अगले पृष्ट पर देखा जा सकता है-



चित्र-16: सुन्दरदास का विटप-विश्व (वृक्ष बंध) प्राचीनतम् पांडुलिपि में

इस विश्व वृक्ष बंध को इस प्रकार पढ़ा जाना चाहिये-

प्रगट विश्व यह वृक्ष है, मूला माया मूल । महातत्त्व अहंकार करि, पीछे भया स्थूल ।। शाखा त्रिगुन त्रिधा भई, सत रज तम प्रसरंत । पंच प्रशाखा जानि यौं, उपशाखा सु अनंत ।। अवनि नीर पावक पवन, व्योम सहित मिलि पंच । इनही कौ विस्तार है, जे कछु सकल प्रपंच ।। श्रोत तुचा दृग नासिका, जिव्हा है तिन माहिं । ज्ञान सु इन्द्रिय पंच ये, भिन्न भिन्न बरताहिं ।।⁵⁸

सुन्दरदास के 'चित्र-काव्यों' में वे एक सिद्धहस्त कवि, भाषा के मर्मज्ञ और काव्य-शास्त्र के आचार्य नज़र आते हैं। 'चित्र-काव्य' की विशुद्ध शब्दालंकार की परम्परा में भक्ति और दर्शन के विषयों की प्रतिष्ठा उन जैसा प्रवीण कवि ही कर सकता था। यह न सिर्फ़ संतकविता की परंम्परा में वरन् स्वयं 'चित्र-काव्य' की संस्कृत और ब्रजभाषा में चली आ रही परंम्परा में भी कुछ नया जोड़ता है। ग़ौरतलब है कि 'चित्र-

काव्य' के कई पद 'सवैया-ग्रंथ' से हैं अत: दोनों का संबंध भी हमारे सामने आता है। 'चित्र-काव्य' के रूप में अलंकारों पर सुन्दरदास का अधिकार उनके आचार्यत्व का केवल एक पक्ष है। दूसरे छोटे-छोटे ग्रंथों में भी सुन्दरदास ने कुशलतापूर्वक कई तरह के अलंकारों का निर्वाह किया है। सुन्दरदास न सिर्फ़ छन्दों का महत्व कविता में बताते हैं वरन् उनकी कविता के पाठकों को छन्दों की वार्णिक व्यवस्था के बारे में शिक्षित भी करते हैं। इस प्रक्रिया के एक प्रत्यक्ष उदाहरण के रूप में उनका यह 'छप्पय' दृष्टव्य है-

> माधोजी है मगण यहै है यगण कहिज्जै । रगण रामजी होइ सगण सगलै सु लहिज्जै ।।

तगण कहै तारक्क जरांत सु जगण कहावै । भूधर भणिये भगण नगण सुनि निगम बतावै ।। हरि नाम सहित जे उच्चरहिं तिनकौं सुभ गण अट्ठ हैं । यह भैद सके जानै नहीं सुन्दर ते नर सट्ठ हैं ।।⁵⁹

सुन्दरदास इस छप्पय में गणों की शिक्षा तो देते हैं लेकिन उनके उदाहरण में वे 'माधोजी' और 'रामजी' जैसी शब्दावली का ही प्रयोग करते हैं। वे कहते हैं कि हरि-नाम के साथ ही इन गणों में कविता करना ही शुभ है और जो यह भेद नहीं जानते हैं वे निरे मूर्ख हैं। इशारा उन कवियों की ओर है जो छन्दों के प्रकार, नियमादि तो जानते हैं लेकिन हरि के नाम की कविता नहीं करते। सुन्दर के छन्दों में शब्द चातुर्य, भाव और आन्तरिक लय का अद्भुत सामंजस्य मिलता है जिसमें पाठक को छन्द और भाव का मिश्रित आनन्द मिलता है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि सुन्दर गणों की पूर्ति के लिए कुछ ख़ास शब्दों का प्रयोग करते हैं और ऐसा लगता है कि छन्द के ढाँचे की ओर ही सुन्दरदास का सारा ध्यान है –

अहौ हरि देव, न जांनत सेव । अहौ हरि राइ, परौं तव पाइ । सुनौ यह गाथ, गहो मम् हाथ । अनाथ अनाथ अनाथ अनाथ ।।⁶⁰ उपर्युक्त छन्द मोतीदांम (संस्कृत नाम 'मोक्तिकदाम') है जिसके हर चरण में ज-गण होते हैं। आख़री चरण से तो ऐसा लगता है मानो सुन्दर इस छन्द की विशेषता (हर चरण में चार-जगण)⁶¹ ही बतला रहे हों।

सुन्दरदास छन्द और अलंकारशास्त्र के नियमों पर लोक-भाषाओं और शिष्ट-भाषाओं से शब्द लेकर कई तरह के प्रयोग कर रहे थे। उनके तीन छोटे काव्यों, पवंगम, अडिला और मडिल्ला में लाटानुप्रास और यमक अलंकार के सहारे जीवात्मा की विरहानुभूति को कुशलतापूर्वक दर्शाया है। इन तीन छोटे काव्यों में सुन्दरदास का

भाषा तथा अलंकारों पर अधिकार और विरहानुभूति की अभिव्यक्ति दोनों प्रमुख हैं। किसी भी एक को उन्होंने कम महत्व दिया हो ऐसा नहीं दिखता-

> दूभर रैनि विहाय अकेली सेजरी । जिनकै संगि न पीव विरहनी सेजरी । (परि हाँ) विरहै संकल वाहि बिचारी सेजरी । सुन्दर दुख अपार न पाऊं सेजरी ।।⁶²

उपर्युक्त पद में सुन्दरदास ने 'सेजरी' शब्द को अलग-अलग यति के माध्यम से प्रत्येक पंक्ति में इस ढंग से नियोजित किया है कि यह चार अर्थ देता है। 'लाटानुप्रास' अलंकार में शब्द की आवृत्ति तो होती है लेकिन अन्वय करने से अर्थ बदल जाता है। उपर्युक्त पद में पहली पंक्ति में 'सेज-री' का अर्थ 'शय्या' है, दूसरा 'से-'जरी' में विरहणी की विरह की 'जलन' की ओर संकेत है, तीसरी पंक्ति में 'से-'जरी' से तात्पर्य विरह रूपी 'सांकल' से 'जड़ी' हुई विरहणी है और चौथी 'से-'जरी' से अर्थ 'जड़ी-बूटी' जिसका भावार्थ 'प्रियतम' है। चौथी पंक्ति में 'परि-हां' से इस पद के लय में गाने का पता भी चलता है। सुन्दरदास ने ऐसे अठारह 'पवंगम' छन्द लिखे हैं। इसी तरह उनका 'अडिला' लघु काव्य भी देखा जा सकता है-

पिय बिन हियरा होइ न सीरा । पिय बिन सजनी खांउ न सीरा ।

मैं की यौ पिव ही सौं सीरा । सुन्दर मेरे इहै नसीरा । 1^{63}

इस पद में 'न-सीरा' शब्द के चार अर्थ हैं और यमक तथा लाटानुप्रास के सहारे सुन्दरदास ने विरह से जुड़ा पद लिखा है। पहली पंक्ति में 'सीरा' शब्द का अर्थ 'शीतल', 'ठंडा' है, दूसरे में व्यंजन विशेष 'हलवा' है तीसरे में राजस्थानी शब्द 'सीर' है, जिसका मतलब 'संबंध' है, और चौथे में अरबी-फ़ारसी 'नसीर' का मतलब 'मददगार' है। सुन्दरदास ने बड़ी सहजता से राजस्थानी और अरबी फ़ारसी शब्दों को अपने काव्य में

स्थान दिया है; जिससे यह स्पष्ट होता है कि एक तो इन भाषाओं की अच्छी जानकारी इनको थी और दूसरा काव्य में चमत्कार पैदा करने के लिये सुन्दरदास जैसे कवि अन्य भाषाओं से भी आसानी से शब्द ग्रहण करते थे। सुन्दरदास ने ऐसे तीस 'अडिला' छन्द लिखे हैं जो उनके प्रवीण कवि होने का ज़बरदस्त उदाहरण है –

मैं तो प्रीति करत नहीं *जानां* । पिव सु ले आए नहीं *जानां* । निश दिन बिरह जरावत *जानां* । सुन्दर अब पिय ही पै *जानां* । 1⁶⁴

उपर्युक्त 'अडिल्ला छन्द' लोक की भाव भूमि पर लिखा गया है जो एक तरह से रीति के 'विप्रलंभ शृंगार' या सन्त-काव्य के 'विरहणी कौ अंग' का ही मिश्रण है। अलंकार यहाँ 'यमक' है। यहाँ बरात के लिये देशी शब्द 'जान' (संस्कृत 'यान' से व्युत्पत्ति), दो बार ब्रजभाषा की क्रिया 'जाना' और एक बार फ़ारसी का शब्द 'जान' जिसे सुन्दरदास ने 'ब्रजकृत' कर दिया है, सभी का सन्दर्भानुकूल अलग-अलग अर्थ निकलता है।

सुन्दरदास अपने समकालीन धार्मिक विश्वासों, सम्प्रदायों का भी पूरा ज्ञान रखते थे। धार्मिक बाह्याडम्बरों का निषेध वे सर्वत्र करते थे और तात्विक ज्ञान को पाने की बात अपनी कविता में करते थे। वे जन्म से जैन मतावम्बी थे लेकिन उन्होंने जैनियों में फैले बाह्याडम्बरों को भी खूब कोसा है। बीस पदों के इस मडिल्ला काव्य में उन्होंने दिखावे को ग़लत बताकर सूक्ष्म ज्ञान पाने की बात कही है-

जीव दया कहा कीनी जैनां । ज्ञान दृष्टि अभिअंतर जै नां । जीव ब्रह्म कौ लह्यौ न खोजा । सुन्दर जती भये ज्यौं खोजा । 1⁶⁵

इस पद में सुन्दरदास ने यमक और लाटानुप्रास अलंकार को मिला दिया है। दो-दो चरणों में एक ही शब्द के दो अर्थ निकलते हैं। पहले चरण में 'जैनां' –जैन मतावलंबी है, और दूसरे में 'जै-नां' का तात्पर्य 'जिन्होंने नहीं' है। तीसरे चरण में

'खोजा' से तात्पर्य 'खोजने' से ही है, चौथे में 'खोजा' का अर्थ फ़ारसी का 'ख्वाजासरा' अर्थात 'नपुसंक या पुरुषार्थहीन' व्यक्ति से है।

उपर्युक्त तीन छोटे काव्य कुछ उदाहरण हैं जिनसे पता चलता है कि अपने काव्य-शास्त्रीय ज्ञान को सुन्दरदास ने संतकविता के सामान्य भावबोध में किस सहजता से ढाला है। इस तरह से अपने मंतव्य और पंडिताई दोनों को सुन्दरदास ने साधा है। काव्य-शास्त्र, अपने समय की प्रधान धार्मिक, साहित्यिक परम्पराओं के साथ-साथ सुन्दरदास का भाषा पर अधिकार इन काव्यों में प्रमुखता से सामने आता है।

3. काव्यशास्त्र पर अधिकार: पंडिताई या अनिवार्य कवि-कर्म?

सुन्दरदास ने काव्य-शास्त्रीय अंगों (छंद व अलंकार) पर इतना बल क्यों दिया? क्या यह बनारस में उनकी शिक्षा का परिणाम था, जहाँ उन्होंने व्याकरण, काव्य आदि का अध्ययन किया था? या यह रीतिकाल में उनके उपस्थित होने और रीति-कावियों से संवाद करने की वजह से आया? या छंदबद्ध कविता करना हिन्दी साहित्य में आदिकाल से ही एक कवि-कर्म बना हुआ था और सुन्दरदास उसी परम्परा के प्रति सजग संतकवि थे?

इस अध्याय के शुरू में सुन्दरदास के छन्द-विमर्श पर चर्चा से इतना तो स्पष्ट होता है कि सुन्दरदास के युग में संस्कृत, प्राकृत और देशभाषा के छन्दों पर अधिकार कवि-प्रतिभा का परिचायक होता था। कवियों में छंद-परम्परा के प्रति आग्रह भी सुन्दरदास के युग में बढ़ता है। कवि अपने ग्रंथों को विविध-छन्दों में रचकर अपनी काव्य-प्रतिभा का परिचय देते थे। यही कारण है कि हिन्दी में रीति-कविता के पहले आचार्य-कवि केशवदास छन्दों पर एक स्वतन्त्र ग्रंथ 'छंदमाला' की रचना करते हैं।

छन्दों पर अत्यधिक बल देने के कारण ही राम के आख्यान को जब रीति-कवि केशवदास अपनी 'रामचंद्रिका' में छूते हैं तो आख्यान से ज्यादा महत्व वे छन्द वैविध्य और अलंकारों के चमत्कार को देते हैं।⁶⁷ छन्दों का केन्द्र में आना 16वीं सदी के उत्तरार्द्ध और उससे आगे बढ़ती हुई एक दूसरी प्रवृति की ओर इशारा करता है। दरबारी आश्रय में कविता रचने से मुक्तकों का चलन बढ़ने लगा था और कई बार कवि तुरत-फुरत कविता का निर्माण करते थे। काव्य कुशलता दिखाने के लिये समस्यापूर्ति करने की प्रवृत्ति भी दरबारों में ज़्यादा थी, जिसका बड़ा लक्ष्य यह होता था कि कौनसा कवि काव्य-रूपों, कवि-समयों, काव्य-रूढ़ियों, उपमेय-उपमान का ज्ञाता है, जिनसे समस्यापूर्ति करने में सहायता मिलती थी।⁶⁸ इस पूरी प्रक्रिया का संबंध 'गेयता' से हटकर कविता के 'पठन' से था और छन्दों पर अधिकार होना 'पठन की प्रक्रिया' को और रोचक बनाता है। रीतिग्रंथों में लक्षण-उदाहरण के लिये दोहा, सवैया और कवित्त को चुना जाता है जो मुख्यत: पठन की प्रक्रिया से जुड़े हुए थे।

सुन्दरदास के युग में कविता के ग्रहण और प्रस्तुतीकरण की दो शैलियाँ मुख्यत: देखी जा सकती हैं। एक गायन की परम्परा जिसमें भक्ति-कविता का बड़ा हिस्सा आता है तो दूसरी शैली कविता के पठन की भी थी। हाँलाकि भक्ति-साहित्य का कथा-वार्ता, उपदेश, सिद्धान्त-कथन इत्यादि रूपों में पठन भी होता था, लेकिन भक्ति काव्य ने लोक और शिष्ट समाजों में गायन की एक समृद्ध परम्परा कायम की थी। लोक से तो भक्ति-काव्य इतना घुला-मिला था कि वह लोक-स्थापित कई गेय-रूपों को भी अपने अन्दर समाहित कर रहा था। कहा भी गया है कि आदि-युग के मौखिक लोकगीतों तथा प्रेमाख्यानों की पृष्ठभूमि पर हिन्दी के संत और भक्ति काव्य का उदय हुआ।⁶⁹

हालाँकि यह भी पूरी तरह से सच नहीं है कि भक्ति-काव्य के उदय से पहले देशभाषा काव्य केवल मौखिक परम्परा में ही चलता था। उससे पहले भी काव्य को गाया जाता था, यहाँ तक कि उसका पठन (रेसिटेशन) होता था, उसे प्रस्तुत भी किया जाता था और इस प्रक्रिया में छन्दों को बहुत महत्व मिला हुआ था। आदि-युग की मौखिक परम्परा में वीर-रसात्मक काव्य की भी परम्परा रही है जिसका संबंध गायन के बजाय स्मृति के आधार पर उसके पठन से होता था। वीरगाथाओं का चूँकि राज-काज के विभिन्न अवसरों पर पठन या प्रस्तुतीकरण होता था इसलिए लय और तुक बद्ध होना, ध्वन्यानुरण पर बल आदि इस पठन की प्रक्रिया को रोचक बनाते थे। वीररसात्मक काव्यों में छन्द-बद्ध काव्य को महत्व हासिल था इसकी पुष्टि के लिए हमें उन प्राचीन ग्रंथों या स्रोतों को देखना होगा जो हिन्दी साहित्येतिहास के आदिकाल में उपस्थित वीर-रसात्मक कविता की जानकारी देते हैं। लोकप्रिय रूपों में हम ऐसी कविता को डिंगल और पिंगल कहते रहे हैं।

आदिकाल में वीर-रसात्मक पदों की जानकारी देने वाले ग्रंथों में सर्वाधिक पुराना 'प्राकृतपैंगलम' है, जिसका रचनाकाल 14वीं सदी का पूर्वार्द्ध है। 'प्राकृतपैंगलम' छन्दशास्त्र का ग्रंथ है, जिसमें रणथम्भौर (राजस्थान) के हम्मीरदेव चौहान (मृत्यु 1301

ई.) से जुड़े वीर-रसात्मक पदों को छन्दों के उदाहरण-स्वरूप दिया गया है-

भंजिअ मलअ चोलवइ णिवलिअ गंजिअ गुज्जरा,

- मालवराअ मलअगिरि लुक्किअ परिहरि कुंजरा ।
- खुरासाण खुहिअ रण महं लंघिअ मुहिअ साअरा ।
- हम्मीर चलिअ हारव पलिअ रिउगणह काअरा ।।

(मलय का राजा भग गया, चोलपति लौट गया, गुर्जरों का मानमर्दन हो गया, मालवराज हाथियों को छोड़कर मलयगिरि में जा छिपा। खुरासाण (यवन

राजा) क्षुब्ध होकर युद्ध में मूर्छित हो गया तथा समुद्र को लांघ गया। हम्मीर के युद्ध के लिए चलने पर कातर शत्रुओं में हा हा कार होने लगा।)⁷⁰

ये वीर-रसात्मक छन्द हमें अपभ्रंश की अंतिम अवस्था 16वीं सदी के बीच देशभाषा साहित्य के विकास को दर्शाते हैं। 'प्राकृतपैंगलम' की भाषा को पुरानी पश्चिमी हिन्दी माना जाता है।⁷¹ इस ग्रंथ (जिसे हम्मीर के काल में ही राजस्थान में संग्रहित हुआ माना जाता है) से यह भी पता चलता है कि वीर-रस या प्रशस्ति से जुड़ी कविता उस दौर में मौखिक या लिखित परम्परा में उपस्थित थी। 'प्राकृतपैंगलम' में जो राजस्तुतिपरक पद पाए जाते हैं उनका विकास एक ओर तो चारण-भाट परम्परा के डिंगलकाव्य में हुआ, दूसरी ओर पृथ्वीराज रासो जैसे प्रबंध काव्यों में हुआ। आगे जाकर रीतिकाल के भूषण, मतिराम और पद्माकर के प्रशस्तिपरक पद्यों में भी इसी का विकास हुआ।⁷²

दूसरे महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'पृथ्वीराज-रासो' से हिन्दी में विविध-छन्दों में कविता करना एक मानक बन जाता है।⁷³ पृथ्वीराज रासो के बारे में कहा भी जाता है कि "*छन्द परिवर्तन के प्रवाह में सहज आत्मविस्मृति का ऐसा सुख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। रासो एक ही साथ संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश की प्राचीन छन्द परम्परा के पुनरुज्जीवन तथा हिन्दी के नूतन छंद-सगीत के सूत्रपात की संधि बेला है।.....इसलिए तो सरोज के रचयिता श्री शिवसिंह सेंगर ने चंद को छप्पयों का राजा कहा है"।*⁷⁴

इसी रासो काव्य परम्परा (जिसमें विविध छन्दों में काव्य रचना को प्रतिष्ठा मिलती है) के समानान्तर पश्चिमी राजस्थान की सशक्त डिंगल (मारवाड़ी) काव्य परम्परा आती है जो युद्धों के वर्णन और 'परफ़ोरमेन्स' में विशेष दिलचस्पी लेती है।⁷⁵ डिंगल के कवि स्वयं को कवि कहलाना भी पसंद करते थे और अपनी कविता को बाद के कवियों द्वारा सराही जाने योग्य भी मानते थे। यह बात तब और भी दिलचस्प हो

जाती है जबकि आरम्भिक आधुनिक काल में 'जायसी' आदि कम ही कवियों ने स्वयं को प्रमुख रूप से 'कवि' कहा है। अकबर के सहयोगी बीकानेर के राजा रायसिंह के छोटे भाई और डिंगल के सर्वोत्कृष्ट कवि पृथ्वीराज राठौड़ (मृत्यु 1600 ई.)⁷⁶ अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'क्रिसन-रुकमणी री वेली' में लिखते हैं –

> जोतिखी, वयद, पउराणिक, जागी संगीती तारकिक सहि चारण भाट सुकवि भाखा-चत्र करि ओकठा त अरथ कहि।⁷⁷

(अर्थात ज्योतिषी, वैद्य, पौराणिक, योग, संगीत, न्याय आदि शास्त्रों के ज्ञाता के साथ चारण-भाट, कुशल कवियों और भाषा के मर्मज्ञों को इकट्ठा करके इस कविता को पढ़ेंगे तो अर्थ समझ में आएगा)

डिंगल काव्य की सभी प्रवृत्तियों का निर्वहन करते हुए पृथ्वीराज राठौड़ यह आग्रह करते हैं कि मेरा ग्रंथ सु-कवियों और भाषा के मर्मज्ञों द्वारा सराहा जाने योग्य है। उनकी बात सही भी निकली कि उनके ग्रंथ की रचना के तुरन्त बाद ही नाभादास तथा राघवदास अपने-अपने 'भक्तमाल' में पृथ्वीराज राठौड़ को श्रेष्ठ कवि घोषित करते हैं। ब्रजभाषा के 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' साहित्य में भी उन पर एक अध्याय समाहित है।⁷⁸ 'क्रिसन-रुक्मणी-री वेली' का संस्कृत और ब्रजभाषा में रूपान्तरण भी होता है। पृथ्वीराज राठौड़ के गुज़र जाने पर ब्रजभाषा के कवि वृंद अकबर से कहलवाते हैं कि पृथ्वीराज के गुज़रने के साथ सभा का आनन्द भी चला गया।⁷⁹ यानी डिंगल काव्य परम्परा का ब्रज कवियों और दरबारों में बहुत सम्मान था और इसका प्रभाव भी ब्रज कविता पर कम नहीं पड़ा। 'क्रिसन-रुक्मणी-री वेली' के पूर्व भी डिंगल काव्य लिखे जा रहे थे। जिनमें दोहा, कवित्त आदि छन्दों का बहुधा प्रयोग भी हो रहा

था। डिंगल के ग्रंथ 'अचलदास खींची री वचनिका' (रचनाकाल 15वीं सदी का पूर्वार्द्ध) में चारण कवि गाढन शिवदास मंगलाचरण में चारणों की कुलदेवी 'देवी हिंगलाज' के बाद सरस्वती की ही उपासना करते हैं जो उनके अनुसार कवियों को कविता करने की प्रतिभा देती है-

वैणा पुस्तक धारिणी, कासमीर कंदरि वसंति , गीत नाद गुण गाह दियण, देखि कवियण दियंति ।⁸⁰

तात्पर्य यह है कि भक्ति काव्य के उदय के पहले डिंगल में काव्य रचना की सशक्त परम्परा स्थापित हो चुकी थी। भले ही हम इस डिंगल काव्य परम्परा को चारण-भाटों की ऊहात्मक कविता कहकर नकारते रहें लेकिन इस काव्य परम्परा का बाद की ब्रजभाषा और अवधी काव्य-धारा - ख़ासकर इनके प्रबंध-काव्यों, युद्ध वर्णन -आदि पर बहुत प्रभाव पड़ा। इसलिए ब्रज और अवधी प्रबंध काव्यों पर डिंगल की युद्ध-वर्णन और चारण-भाटों की काव्य-पठन (रेसिटेशन) की परम्परा के प्रभाव का विस्तृत अध्ययन ज़रूरी है, क्योंकि इसका संबंध काव्यशास्त्र (विशेषकर छन्द) के कविता के केन्द्र में आने से जुड़ता है। भक्ति के उदय से पहले पश्चिमी राजस्थान और गुजरात में प्रचलित वीरगाथाओं की परम्परा का संबंध चारण -भाटों से जोड़ा जाता है। चारण-भाटों का काव्य मुख्यत: दरबारी था लेकिन वह लोकभाषा में ही रचा जा रहा था। यह साहित्य राज-काज के शुभ अवसरों पर 'परफ़ोर्म' भी किया जाता था। 'पर्फोरमेन्स' की यह प्रक्रिया स्मृति से होती थी जिसमें चारण-भाट कवि लय-ताल और छन्द-बद्ध कविता सुनाते थे। इस काल से ही लय और छन्द-बद्ध कविता कहना कवियों का अनिवार्य कर्म हो गया था। छन्दों पर बल देने से कविता को स्मृति में रखना आसान हो जाता था जो इन कवियों के लिए सहायक था। चारण-भाट अपने विशेष तरह के शब्दालंकार (वयण-सगाई)⁸¹, मूर्धन्य व्यंजनों ('ट' वर्ग के वर्णों (ट, ठ, ड, ढ,

ड़, ढ़, ण) की अधिकता), ध्वन्यानुरण आदि से युद्धों का सजीव वर्णन करते थे। यह वर्ग अपनी ज़रूरतों के अनुसार छन्दों को 'परिवर्तित' (मोडिफ़ाई) भी कर रहा था। दोहे को डिंगल में अलग-अलग मात्राओं के आधार पर चार ढंग से पढ़ा जाता था, ठीक इसी तरह छप्पय भी तीन तरह के होते थे।⁸² यानी डिंगल काव्य में दोहा, छप्पय आदि छन्दों को 'पठन की प्रकिया' में और 'परफ़ोरमेन्स' की ज़रूरतों के हिसाब से परिवर्तित किया जाता था। छन्दों के प्रति लगाव होने की वजह से चारण-भाट कवि अपने प्रशस्तिपरक ग्रंथों के नाम भी छन्दों या काव्य विधाओं पर रखते थे- जैसे अचलदास खींची री 'वचनिका', 'छन्द राव जैतसी रो', 'क्रिसन-रुक्मणी-री वेली' और 'रासो' काव्य इत्यादि। इसी चारण-भाट साहित्य का संबंध बाद के ब्रजभाषा और अवधी प्रशस्ति काव्यों में युद्धों के सजीव वर्णन से जुड़ता है। तुलसीदास अपने रामचरितमानस के लंका-कांड में राम-रावण का जो युद्ध वर्णन करते हैं उस पर डिंगल की चली आ रही युद्ध-वर्णन की परम्परा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।⁸³

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि देशभाषा काव्य की परम्परा की शुरूआत से ही हमें 'प्राकृतपैंगलम' जैसे ग्रंथ कविता के छन्दबद्ध होने का उदाहरण देते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' जैसे ग्रंथ विविध-छन्दों में काव्य रचना को काव्य का मानक साबित करते हैं। ठीक उसी तरह डिंगल काव्य और चारण-भाटों की परम्परा में छन्दों का अपनी ज़रूरतों के हिसाब से प्रयोग होता रहा है। इनसे यह सिद्ध होता है कि भक्ति काव्य के आने से पहले ही देशभाषा में कविता रचने के कुछ मानक बन चुके थे। ब्रजभाषा कवियों के सशक्त छन्दविमर्श से पहले भी छंद देशभाषा-साहित्य के महत्वपूर्ण अंग होते थे, साथ थी साथ विविध छंदों में काव्य के पठन की परम्परा भी विकसित हुई थी, जिन पर अधिकार होना एक अनिवार्य कवि-कर्म था। छन्दों के प्रति विशेष आग्रह होने के कारण सुन्दरदास का कवि रूप सामने आता है। वे अपने ग्रंथों

का नाम भी छन्दों के आधार पर रखते हैं। जैसे 'सवैया' ग्रंथ, 'गुरु महिमा नीसांनी', बारह तरह के 'अष्टक' काव्य, 'पूर्वी भाषा बरवै', 'अडिल्ला', 'मडिल्ला' और 'पवंगम' छन्द आदि।

4.<u>सुन्दरदास के काव्य में शास्त्र और लोक का समन्वय</u>

20वीं सदी के हर सजग आलोचक ने भक्तिकाल को समझने-समझाने की कोशिश की है। संत और भक्त अपनी संवेदना, मार्मिकता और आध्यात्मिकता को कविता के ऐसे मुहावरे में प्रस्तुत करते हैं कि लोक जीवन पर उनका प्रभाव गहरे में होता है। वे लोक जीवन की कई बातों को भक्ति के आलोक में प्रस्तुत भी करते हैं। इस तरह इतिहासकारों ने भक्ति को 'मुसलमानी आक्रमण की प्रतिक्रिया,' 'लोक और शास्त्र का द्वंद्व', 'सामंती संस्कृति के विरुद्ध जनसंस्कृति के उत्थान का आन्दोलन', 'शास्त्रोक्त बनाम काव्योक्त भक्ति' के रूप में समझा है। इस विमर्श में एक पक्ष छूट गया है, वह है सन्तों-भक्तों द्वारा शास्तों को समझने की कोशिश, उन पर लोकभाषा में कविता करके जन-सामान्य तक पहुँचाने, दर्शन और अध्यात्म के ग्रंथों पर बौद्धिक विमर्श करने की प्रवृत्ति आदि। भक्तिकाल पर चर्चा करते समय ऐसे विषयों का उल्लेख भी होना चाहिए। भक्ति-धारा के उच्च श्रेणी के कवि तथाकथिक रीतिकाल में भी होते रहे। वर्णाश्रम व्यवस्था में निम्न समझी जाने वाली जातियों में भी कई संत-भक्त कवि हुए, उन्होंने अपने पंथ स्थापित किये और गादीपति भी हुए। राजस्थान में दादूपंथ, रामसनेही सम्प्रदाय, निरंजनी सम्प्रदाय उत्तर-भारत में बावरी पंथ, दरिया पंथ आदि पंथों के रूप में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं।

दादूपंथ में शुरू से ही शास्त्र-ज्ञान के प्रति आग्रह था। दादूपंथियों के अनेक ग्रन्थ एक जैसी पंक्ति से शुरू होते हैं वह है 'दादू नमो: निरंजन'। यह मंत्र स्मार्त परम्परा या

पांचरात्र मत में प्रसिद्ध आठ अक्षरों के मंत्र की तरह है। नवधा भक्ति में जप का जहाँ उल्लेख होता है वहाँ दो तरह से मंत्रजाप होता है। बारह (या तेरह) अक्षरों का 'ओम नमो भगवते वासुदेवाय' और आठ अक्षरों का 'ओम नमो नारायणे।'⁸⁴ इन्हीं आठ अक्षरों की तरह दादूपंथियों का 'दादू नमो: निरंजन' लगता है। ठीक इसी तरह शंकराचार्य ने 'ब्रह्मसूत्र' भाष्य में वासुदेव के चतुर्व्यूह की उपासना की पाँच विधियों का उल्लेख किया है, जिसमें 'अष्टाक्षर' जाप एक है, जिसे वे 'स्वाध्याय' नाम देते हैं।⁸⁵ सुन्दरदास के कई तरह के 'अष्टक' लिखने के पीछे इस अष्टाक्षर मंत्र या आठों-याम की साधना का प्रभाव भी देखा जा सकता है।⁸⁶ इस तरह सुन्दरदास स्मार्त परम्परा के कुछ तत्त्व ग्रहण तो करते हैं लेकिन उसे अपने पंथ के विश्वासों के आधार पर ढाल देते हैं। सुन्दरदास ने संत-काव्य की चली आ रही अंगों में विभाजित कविता में अपने शास्त-ज्ञान को भरते हुए 'अद्वैत ज्ञान कौ अंग', 'सांख्य कौ अंग', 'ज्ञानी कौ अंग', 'अन्योन्य भेद कौ अंग' आदि नए अंग भी जोडे हैं।

इस अध्याय में पहले यह दिखाया जा चुका है कि सुन्दरदास ने अद्वैत और सांख्य दर्शन से जुड़े शास्त्र- ज्ञान को कैसे आत्मसात किया था और उस पर ब्रजभाषा में जो कविता लिखी उसे संत या दरबारी समुदाय ही नहीं आम-जन भी पढ़ते थे। अपनी कविता में वे संस्कृत ग्रंथों का सन्दर्भ के रूप में भी उल्लेख करते हैं, जिससे उनका इन ग्रंथों को महत्व देना सामने आता है। इसके अलावा सुन्दरदास उन आचार्यों, मुनियों, महापुरुषों के प्रति सम्मान व्यक्त करते हैं जिन्होंने कोई दर्शन या सिद्धान्त दिया है-

> सनकादिक नारद मुनी, शुक अरु ध्रुव प्रहलाद । भक्ति योग सो इन कियो, सद्गुरु कैं जु प्रसाद ।

आदिनाथ मत्सेंद्र अरु, गोरख चर्पट मीन । काणेरी चौरंग पुनि, हठ सु योग इनि कीन ।। ऋषभदेव अरु कपिल मुनि, दत्तात्रेय वशिष्ठ । अष्टाबक्र रु जड़भरत इन कै सांख्य सुदृष्ट ।।⁸⁷

सुन्दरदास जिस सजगता से भक्ति, योग और सांख्य दर्शन से जुड़े व्यक्तियों की बात करते हैं उससे पता चलता है कि वे ज्ञान को केवल मौखिक परम्परा से ग्रहण नहीं कर रहे थे जैसा कि अन्य संतकवियों के विषय में कहा जाता है। वे उन आचार्यों और मुनियों की परम्परा का उल्लेख करते हैं जिन्होंने कोई सिद्धान्त कथन किया है। इन मुनियों के बताए ग्रंथों का पारायण भी सुन्दरदास ने किया होगा।

दिलचस्प बात यह है कि शास्त्रीय परम्परा से गहरे में परिचित होते हुए सुन्दरदास इससे आक्रान्त नहीं होते और न ही वे किसी परम्परा को ज्ञान का एकमात्र स्रोत ही बताते हैं। वे सभी परम्पराओं का लक्ष्य 'परम तत्त्व' की प्राप्ति मानते हैं –

> महापुरुष जे इन मतै , तिनकी मैं बलि जाउं । मारग आये दश दिशा , पहुँचे एकहि गांउं ।।⁸⁸

सभी तरह के मत-मतान्तरों का उल्लेख करते हुए भी 'अनुभव-जन्य ज्ञान' को ही सुन्दरदास सबसे ऊपर रखते हैं, यही उन्हें कबीर आदि संतों की परम्परा से जोड़ता है-

> न्यास शास्त्र कहत है प्रगट ईश्वरबाद, मीमांसक शास्त्र महिं कर्मबाद कह्यौ है। वैशेषिक शास्त्र पुनि कालबादी है प्रसिद्ध, पातंजलि शास्त्र महिं योगबाद लह्यौ है। सांख्यशास्त्र माहिं पुनि प्रकृति पुरुषबाद, बेदान्त शास्त्र तिनहिं ब्रह्म बाद गह्यौ है। सुन्दर कहत षट् शास्त्र मांहि भयौ बाद, जाकै अनुभव ज्ञान बाद मैं न बह्यौ है।।

सुन्दरदास दर्शनों या शास्त्रों को गहराई से जानते हुए भी उनसे आक्रान्त नहीं होते। उनकी भक्ति सबमें प्रमुखता पा जाती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि सुन्दरदास ने लोक को भी ज्ञान का प्रमुख स्रोत माना है। सुन्दरदास के देशाटन के सवैयों से ज्ञात होता है कि उन्होंने भारतवर्ष का काफ़ी भ्रमण किया था जिससे विभिन्न क्षेत्रों के लोगों के सम्पर्क में वे आए थे। लोकजीवन में बसी उक्तियों, मुहावरों का जिस कुशलता से सुन्दरदास ने अपनी कविता में प्रयोग किया है उससे पता चलता है कि उन्होंने लोक को भी ज्ञानी माना है। पुरोहित हरिनारायण शर्मा ने 'सुन्दर ग्रंथावली' की भूमिका में सुन्दरदास के काव्य में आईं 293 लोकोक्तियों का संग्रह किया है।90 नन्नूलाल खंडेलवाल ने सुन्दरदास की कविता में उपस्थित 200 लोकोक्तियों और 500 मुहावरों का पूरा कोश ही तैयार किया है। वे लिखते हैं, "भाषा के प्रयोगकर्ता और प्रवाहपूर्ण एवं तरंगित शैली के शिल्पी के रूप में उन्होंने (सुन्दरदास ने) इन लोकोक्तियों को अपनी रचनाओं में नगीनों की तरह जडा है। किन्तु उनका यह प्रयोग हिन्दी कोशकारों की नज़रों से ओझल ही रहा, फलत: कोश इस निधि से खाली ही रहे। उनके द्वारा प्रयुक्त अनेक कहावतें सटीक, सार्थक, गहरे अर्थों को व्यंजित करती हई और मार्मिक हैं। उनके द्वारा इन कहावतों के प्रयोग की एक विशेषता और है। उन्होंने इन कहावतों के माध्यम से बहुत गहरे आध्यात्मिक अर्थों की निष्पत्ति की है।'⁹¹

सुन्दरदास ने मुहावरों और लोकोक्तियों का अपनी कविता में प्रयोग दो तरह से किया है। एक तो अपनी आध्यात्मिक संवेदना को प्रकट करने के लिए और दूसरा किसी लोकोक्ति को ही आधार बनाकर उस पर भक्ति के पद लिखना। उदाहरण के लिए लोकजीवन में एक कहावत प्रचलित है जिसमें सारहीन प्रयास करने के प्रति लोगों को चेताया जाता है। सुन्दरदास ऐसी ही कहावत को आधार बनाकर मोहासक्त, मदान्ध व्यक्तियों को चेतावनी देते हैं। क्योंकि मोह अंत में सारहीन ही होता है। ऐसा

करते हुए सुन्दरदास अपने 'मनहर' छन्द को लोकोक्तियों से भर देते हैं। 'कूकस कूटहि कन बिना (ऐसे भूसे को कूटने से कोई फ़ायदा नहीं जिसमें अन्न पहले से ही न हो), 'बालू से तेल नहीं निकलता', 'पानी के मथने से घी नहीं निकलता', 'बंजर भूमि में अन्न नहीं उगता' आदि लोकोक्तियों का वे बड़ी सहजता से प्रयोग करते हैं-

> बालू माहिं तेल नहिं निकसत, पाथर न भीजे बहु बरषत घन है। पानी के मथे तें कहुं घीव नहिं पाइयत, कूकस के कूटे नहिं निकसत कन है। शून्य कूं मूठी भरे तें हाथ न परत कछु, ऊसर के बाहें कहा उपजत अन है। उपदेश औषध कवन विधि लागै ताहि, सुन्दर असाध्य रोग भयो जाकै मन।।

बहुत ही चर्चित कहावत है कि 'चादर जितनी लम्बी हो उतने ही पैर पसारने चाहिये' अर्थात साधन के अनुसार ही ख़र्च करना चाहिये। इसी को आधार बनाकर सुन्दरदास लिखते हैं कि-

> काहे को करत नर उद्यम अनेक भांति, जीवनौ है थौरो तातैं कल्पना निवारिये। साढ़े तीन हाथ देह छिनक मैं छूटि जाइ। ताके लिये ऊंचे ऊंचे मंदिर संवारिये। माल हू मुलक भये नृपति न क्यौं ही होइ, आगै ही कौं प्रसरत इंद्री क्यौं न मारिये। सुन्दर कहत तोहि बावरे समझि देखि, *'जितनीक सोरि पांव तितने पसारिये'।1*93

राजस्थानी लोक जीवन में एक कहावत है कि 'सोए हुए व्यक्ति की भैंस बछड़ा ही देगी' (नर बछड़ा भविष्य में भैंस नहीं बन सकता और किसान के किसी काम का नहीं होता) अर्थात किसी के भरोसे पर छोड़े हुए काम बिगड़ ही जाते हैं। इस कहावत पर यह सवैया दृष्टव्य है-

> जो कोउ राम बिना नर मूरष औरन के गुन जीभ भनैगी । आंनि क्रिया गढ़तें गढ़वा पुनि होत है भेरि कछू न बनैगी ।। ज्यौं हथफेरि दिषावत चांवर अन्त तौ धूरि की धूरि छनैगी । सुन्दर भूल भई अतिसै करि *'सूते की भैंसि पडाइ जनैगी' ।*

सुन्दरदास ने अपने लघु काव्य 'पंच-प्रभाव' में लोक और शास्त्र का अद्भुत सामंजस्य किया है। भक्ति रूपी 'कन्या' का संत रूपी 'दूल्हे' से विवाह का रूपक अपनाते हुए उन्होंने विवाह के समय किये जाने वाले व्यवहारों तथा वैवाहिक और पारिवारिक जीवन का बहुत चतुराई से रूपक बाँधा है-

| भक्ति सुता परब्रह्म की , आई इहिं संसार | I |
|---|-----------------|
| उत्तम वर ढूंढत फिरै , माया दासी लार | 11 |
| •••••• | |
| तब संतनि कै ढिंग गई , देखे शीतल रूप | I |
| क्षमा दया धृति दीनता , सब गुन अजब अनूप | I |
| तिन के लक्षण देखि कैं , भक्ति सुबोली आप | I |
| तुम ते मन राजी भयौ , मो सौं करहु मिलाप | ا ⁹⁵ |

परब्रह्म की पुत्री भक्ति इस संसार में वर ढूँढ रही है। योगी, जंगम, जैन, सूफ़ी आदि को देखती है और कोई पसंद नहीं आता है। फिर संतों को देखती है और उन्हें क्षमा, दया, धीरज, दीनता आदि सर्वगुणसंपन्न पाती है और विवाह का प्रस्ताव रखती है। भक्ति के साथ माया रूपी दासी है। भक्ति व माया के साथ संतजनों के लगाव के तीन स्तरों को दर्शाते हुए सुन्दरदास उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार की भक्ति बताते हैं। चौथे प्रकार का व्यक्ति तो भव-सागर में डूब ही जाता है। लेकिन इन चारों से परे ज्ञानी होता है, वह इनसे अलिप्त रहता है और तुरियातीत अवस्था वाला होता है। अन्त में जिस ज्ञानी की बात सुन्दरदास करते हैं उसे 'भगवत्-गीता' में इस प्रकार कहा गया है –

उदारा सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् । आस्थित स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् । 196

सुन्दरदास ने लोक-आधारित काव्य-रूपों का प्रयोग अपने आध्यात्मिक संदेश के लिए किया है। उन्होंने इन काव्य-रूपों में आवश्यकतानुसार बदलाव भी किये हैं। इनमें प्रमुख है उनका 'बारहमासा'। देशभाषा काव्य की शुरूआत से ही 'बारहमासा' एक प्रमुख विधा रही है जिसे लोक से साहित्यिक धारा ने अपना लिया। हिन्दी साहित्य में विरहानुभूति से जुड़े 'बारहमासा' अवधी, ब्रज, डिंगल, आधुनिक हिन्दी और उर्दू आदि भाषाओं में लिखे गये।⁹⁷ जैन, सूफ्री, संत-भक्त भी बारहमासे या इस परम्परा से प्रभावित कविता लिखते थे।⁹⁸ अवधी प्रेमाख्यानों के बारहमासे तो हिन्दी साहित्य में प्रसिद्ध हैं ही। इन बारहमासों की कुछ सामान्य विशेषताएँ होती हैं, जैसे ये विरहानुभूति से जुड़े होते हैं, लोक में बसे विश्वासों, चरित्रों आदि का प्रतीकों, रूपकों के रूप में प्रयोग करते हैं और अधिकतर वर्षा ऋतु (आषाढ़-सावन) में शुरू होते हैं तथा गर्मी (जेठ) महीने में खत्म होते हैं। इसलिए विद्वानों ने बारहमासों का संबंध लोक में बसे चौमासा-लोकगीतों से भी जोड़ा है। सुन्दरदास ने हिन्दी के विरह-बारहमासों से थोड़ा हटकर उत्तर-भारत के ऋतु-परिवर्तन और विक्रम मास संवत्सर को अपनाते हुए अपना बारहमासा चैत्र मास से शुरू किया है-

प्रथम सखी री चैत वर्ष लगौ नयौ । मेरौ पिव परदेश बहुत दिन कौ गयौ ।। बिरह जरावै मोहि बिथा का सौं कहौं । (परि हाँ) सुन्दर ऋतु बसंत कंत बिन क्यौं रहौं ।।⁹⁹

इस बारहमासा को सुन्दरदास ने जीवात्मा की विरहानुभूति और परमात्मा से मिलन की उत्कंठा के रूप में लिखा होगा लेकिन यह ठेठ लौकिक बिम्बों को अपनाते हुए लिखा गया है। यही सुन्दरदास की लोक से निकटता को दिखाता है-

फागुन घर घर फाग सु खेलहिं कंत सौं । केसरि चन्दन अगर गुलाल बसंत सौं ।। मेरैं नख-शिख अग्नि बारि बिरहा दई । (परि हां) सुन्दर मृतक समान देखि बिरहनि भई ।।¹⁰⁰

सुन्दरदास की कविता केवल संतों के पढ़ने के लिये नहीं साधारण व्यक्तियों के लिये भी है। तभी वे वैरागी और गृहस्थ में संवाद करवाते हैं और इन दोनों का पारस्परिक समन्वय करवाते हैं-

> गृही कहै जु सुनहुं वैरागी बिरक्त भये सु काहे जू । कै तुम सौं परमेश्वर रूसे कै तुम काहू बाहे जू ।। वैरागी बोलै जु गृही सुनि मेरे ज्ञान प्रकासा जू । मिथ्या देखि सकल संसारा तातें भये उदासा जू ।।

अंत में सुन्दरदास वैरागी और गृहस्थी को एक दूसरे पर आश्रित बताकर एक-दूसरे का उद्धार करने वाला बताया है-

विरक्त धर्म रहै जु गृही तें गृहि कौं विरक्त तारै जू।102

संत साहित्य की एक और विधा जिसे सुन्दरदास ने ज़बरदस्त साहित्यिक और दार्शनिक आधार दिया है वह है उलटबाँसी साहित्य। गोरखनाथ, कबीर, हरिदास, दादू अपनी उलटबाँसियों के लिए प्रसिद्ध हैं। संतकवि जिस आद्यात्मिक ज्ञान के होने की बात करते हैं, जिस अनुभव सत्य का बयान करते हैं और ज्ञान का स्रोत जहाँ होने की बात करते हैं, वह पारम्परिक और सामान्य ज्ञान से अलग था या कहें तो विपरीत था। इस ज्ञान को कविता में कहने के लिए वे उलटबाँसियों का सहारा लेते हैं। उलटबाँसियाँ शब्दों का सांकेतिक प्रयोग करती हैं। इनके प्रतीक विरोधाभासी होते हैं और अर्थ खुलने पर ही उनका प्रयोग समझ में आता है। इसीलिए इस विधा को उलटी-बानी कहा जाता है। सुन्दरदास ने जिस विस्तार से अपने 'सवैया' और 'साखी' ग्रंथ के 'विपर्यय शब्द कौ अंग' में उलटबाँसी को सुदृढ़ सैद्धांतिक आधार दिया है, साकेंतिक भाषा को शास्तीय संदर्भ दिये हैं, उससे सुन्दरदास की उलटबाँसियों को पूरी संत परम्परा में सबसे समृद्ध कहा जा सकता है। उनके 'विपर्यय के अंगों' का प्रतीक विधान इतना गहरा है कि इन अंगों पर अलग से टीकाओं की परम्परा भी मिलती है।¹⁰³ हालाँकि ये अंग सुन्दरदास के 'सवैया' और 'साखी' ग्रंथों के ही हिस्से हैं लेकिन इनको इन अंगों को स्वायत्त रूप से भी पढ़ा जाता है। सुन्दरदास अपनी उलटबाँसियों के प्रतीक अधिकतर लोक-विश्वासों, कहावतों और ग्राम्य-जीवन व्यवहारों से लेते हैं। सुन्दरदास जैसा कुशल, और भाषा पर अधिकार रखने वाला कवि ही उलटबाँसियों को सवैयों के माध्यम से एक सुदृढ़ साहित्यिक आधार प्रदान कर सकता था। सुन्दरदास की विपर्यय के अंगों में लिखी उलटबाँसियाँ पूरे उलटबाँसी साहित्य की आधार पीठिका हैं –

- बुंदहि मांहि समुद्र समानौ राई मांहिं समानौ मेर ।
- पानी मांहि तुंबिका बड़ी पाहन तिरत न लागी बेर ।।
- तीनि लोक मैं भया तमासा सूरय कियौ सकल अंधेर ।
- मूरष होइ सु अर्थहि पावै सुन्दर कहे शब्द मैं फेर ।।104

इस पद में 'बूंद' जीवात्मा का प्रतीक है, 'समुद्र' परमात्मा का। 'राई' ज्ञान-भक्ति की सूक्ष्मता को दर्शाती है तो 'सुमेरू' पर्वत अहंकार या मन की चाल की विशालता का प्रतीक है। 'पानी', भक्ति की सात्विकता का प्रतीक है जिसमें 'तूँबी' रूपी काया डूब जाती है। जिस भक्ति के उदय होने से 'पाषाण' रूपी हृदय भी उसकी सात्विकता रूपी जल में तिरने लगता है। जब ज्ञान रूपी सूर्य उदय होता है तो नाना तत्त्वों की समाप्ति हो जाती है, द्वैत समाप्त हो जाता है इसीलिए सांसारिक ज्ञान में सर्वत्र अंधकार छा जाता है। और लोकदृष्टि से मूर्ख कहा जाने वाला व्यक्ति (अन्तर्मुखी साधक) इन शब्दों की विरोधाभासी संगति में छिपे गूढ़ार्थ को पा जाता है।¹⁰⁵

दार्शनिकता और साहित्यिकता का आधार होने पर भी सुन्दरदास की कविता में ज़बरदस्त पठनीयता है। वे अपनी कविता को इस ढंग से रचते हैं कि उसमें देशज शब्द, मुहावरे घुलमिल जाते हैं जो जनमानस पर उसी के मुहावरे में चोट करते हैं। उनके बहुत से लघु-ग्रंथों को पढ़कर लगता है कि वे निश्चय ही समूह के पठन और श्रवण के लिये लिखे होंगे –

> रचना यह परब्रह्म की चौरासी झकझौल । मनुष देह उत्तम करी (सु) हरि बोलौ हरि बोल ।। आयौ नर संसार में करि साहब सौं कौल । पवन लगत बीसयौं (सु) हरिबोलो हरिबोल ।।

यहाँ हर दोहे के अन्त में 'हरि बोलो हर बोल' की टेक से लगता है कि लोग सामूहिक रूप से इसे टेक-स्वरूप उच्चारित करते होंगे। हर दूसरी पंक्ति में एक टेक आती है जो समूह –पाठ के लिये होती है, बाक़ी का हिस्सा वह व्यक्ति जो उसे पढ़ सके उसके लिये होता होगा। ऐसे ग्रंथों से साधारण गृहस्थ भी समूह-पाठ में सम्मिलित हो सकते थे। देशज शब्दावली में बात कही जाने से उस कविता से स्वयं को जोड़ सकते थे और 'टेक' के दोहराव के साथ उसे एकाग्रचित होकर सुन सकते थे। ठीक ऐसे ही आज 'रामचरित मानस' का भी पाठ होता है। ऐसे पाठों में कभी-कभी कोई एक 'टेक' जो ग्रंथ में उपस्थित नहीं है, उसे स्वयं कथावाचक द्वारा डाल दिया जाता है, जिसे श्रोता किसी भी छन्द की समाप्ति पर बोला करते हैं। या कभी कभी सिर्फ़ 'हरि' शब्द बोला

करते हैं, जैसा कि सुन्दरदास ऊपर अपनी 'हरिबोल चितावणी' में दिखाते हैं। ऐसी कविताएँ हमें दिखाती हैं कि भक्ति-कविता कैसे एक भक्ति-समुदाय का गठन कर रही थी।

<u>निष्कर्ष-</u>

सुन्दरदास का काव्य इस बात का अच्छा उदाहरण है कि धर्मशास्त्र और काव्यशास्त्र पर कविता लिखना, उसे संतों की संवेदना के अनुकूल बनाना, 17वीं सदी से ही दादूपंथ जैसे निर्गुण पंथों में प्रमुखता पा रहा था। निरंजनी और रामसनेही सम्प्रदायों में भी सुन्दरदास की तरह के कवि हुए। निरंजनी सम्प्रदाय में तो 'छन्द-रतावली' नाम से छन्द-अलंकारों पर स्वतंत्र काव्यशास्त्रीय ग्रंथ ही लिखा गया।107 निरंजनी संतों ने वेदांत, भर्तृहरि के 'वैराग्य शतक' आदि को भी ब्रजभाषा में प्रस्तुत किया। सुन्दरदास के 'साखी' और 'सवैया' ग्रंथों में 'वचन विवेक' और 'नारी निन्दा' जैसे अंगों का केशवदास के रीतिग्रंथों के साथ 'अन्तर्पाठ' किया जाए तो इन दोनों कवियों के चिन्तन की समानताएँ और मत-वैभिन्य का भी पता चलता है। सुन्दरदास द्वारा लिखित चित्र-काव्य उनकी काव्य प्रतिभा के उद्भत नमूने हैं। ठेठ शब्दालंकार से जुड़े इस काव्य-रूप को भक्ति, आध्यात्मिक और दार्शनिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लिखना सुन्दरदास के आचार्यत्व को दिखाता है। छन्दों के प्रति सुन्दरदास का विशेष लगाव अपने चरम पर पहुँचता है जब वे 'सवैया ग्रंथ' में अनेक प्रकार सवैयों और घनाक्षरी छंदों में भक्ति-मय कविता करते हैं। सवैया और घनाक्षरी दोनों रीति-कविता के प्रधान छन्द रहे हैं।

छन्द-वैविध्य को देशभाषा काव्य में भक्ति-रीति काल से पहले भी प्रमुखता मिली हुई थी। आदिकालीन ग्रंथों में छन्दबद्ध कविता कैसे की जाती थी, छन्द-वैविध्य

को प्रमुखता कैसे मिली थी, राजस्थान की डिंगल काव्य परम्परा उसका दिलचस्प उदाहरण है। सैद्धान्तिक कविता को रचने, कविता को कवियों के समाज में प्रतिष्ठित करने के लिए प्राकारान्तर से कवि छन्द-वैविध्य का सहारा लेते थे। सुन्दरदास अपने 'ज्ञान-समुद्र' को विविध छन्दों में रचकर उसी परम्परा का परिचय देते हैं, जिसे आदिकाल से देशभाषा का कवि निभाता आ रहा था।

सुन्दरदास ने अद्वैत-वेदान्त, सांख्य, योग आदि दर्शनों पर संत-शिक्षा के लिये जो कविता की, उसका प्रभाव बाद के कवियों पर गहरे में पड़ा। सुन्दररदास के ये सरोकार जिनमें संतबानी को छन्द आदि के नियमानुसार लिखना, नवधा, प्रेमालक्षणा और पराभक्ति के प्रकारों को समझाना, संस्कृत में विद्यमान योग, सांख्य और अद्वैत वेदान्त पर ब्रजभाषा में ग्रंथ लिखकर उन्हें संत-समुदाय के लिए सुलभ करवाना आदि ही वे कारण थे जिनसे उनके समकालीन राघवदास अपने 'भक्तमाल' में उन्हें 'दूसरा शंकराचार्य' कहते हैं। सुन्दरदास के काव्य का बाद के कवियों पर पड़े प्रभावों का प्रधान उदाहरण दादूपंथ के निश्चलदास (1791- 1863 ई.) हैं जिन्होंने एक ठेठ वेदान्ती की तरह अद्वैत वेदान्त पर ही 'विचार-सागर' जैसा विद्वतापूर्ण ग्रंथ लिखा है।¹⁰⁸ निश्चलदास से उन्नीसवीं सदी के समाज सुधारक स्वामी विवेकानन्द और दयानन्द सरस्वती दोनों गहरे में प्रभावित थे। विवेकानन्द ने कहा भी है कि पिछले 300 वर्षों में भारत की किसी भी भाषा में 'विचार-सागर' जैसा ग्रंथ नहीं लिखा गया, जिसका इतना प्रभाव पड़ा है।¹⁰⁹ तात्पर्य है कि सुन्दरदास के बाद की परम्परा के संतकवियों में शास्तों

के प्रति रूझान और भी बढ़ा और उन्होंने कालजयी काव्य की रचना भी की। सुन्दरदास के काव्य का समग्रता में अध्ययन करने पर हमें आधुनिक इतिहास ग्रंथों में भक्ति और रीति को एक-दूसरे का विरोधी मानने वाली आलोचकीय प्रवृत्ति के अर्थहीन होने का भी पता चलता हैं। ऐसे विषय भी सामने आते हैं जहाँ भक्ति और

रीतिकालीन कवि एक ही धरातल पर खड़े दिखाई देते हैं। भक्ति और रीति में एक को लोकसंग्रही और दूसरे को सामन्ती मानने की अवधारणा पर हाल में कुछ अध्येताओं ने सवाल भी उठाए हैं।¹¹⁰ इस विमर्श में यह शोध-प्रबंध कुछ नया जोड़ने का प्रयास भी करता है और भक्ति-रीति के संवाद को दिखाते हुए पहली बार एक संत-कवि का अध्ययन करता है। सुन्दरदास के 'ज्ञान समुद्र' को ही देखा जाए तो कई बातों में यह एक रीति-ग्रंथ की तरह लगता है, जैसे ग्रंथ को प्रस्तुत करने की शैली, लक्षण- उदाहरण योजना, संस्कृत, प्राकृत और देशभाषा के विभिन्न छन्दों का परिचय, साहित्यिक ब्रजभाषा को अपनाकर शिक्षा के लिए इस कविता का किया जाना आदि। वहीं रीति-ग्रंथों के नायिका-भेद, नख-शिख और शृंगार रस आदि विषयों पर सुन्दरदास आपत्ति भी जताते हैं।

रीति-कवियों के शृंगार वर्णन के प्रति जो आपत्ति सुन्दरदास ने उठाई थी, उसका पूर्ण विकास हमें उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में 'आधुनिक हिन्दी' के निर्माताओं के चिन्तन में मिलता है। लेकिन उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में रीति-कविता के शृंगार आदि विषयों को सामन्ती या शासक वर्ग के चारित्रिक पतन से जोड़ दिया जाता है, जिस प्रवृत्ति को 'आधुनिक काल' का हिन्दी वर्ग भूलाने के लिए व्यग्र होता जा रहा था। सुन्दरदास रीतिकवियों की तरह ही पंडिताई दिखाते हैं तथा काव्यांगों से लदी कविता करते हैं, लेकिन जिस वर्ग के लिए वे अपना काव्य रच रहे थे, उसमें संत-समुदाय, उनके सरोकार, उनकी संवेदना और उनकी चिन्ताएँ ही प्रमुख थीं।

सन्दर्भ और टिप्पणियाँ :

- 1 आचार्य रामचंद्र शुक्ल, *हिन्दी साहित्य का इतिहास*, पृ. 48-50, शुक्लजी ने अपने 'इतिहास' में दादू के बाद उनके शिष्यों में केवल सुन्दरदास को स्थान दिया है। हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, *हिन्दी साहित्य की भूमिका*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2003, पृ. 103-04, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी दादू के शिष्यों में सुन्दरदास के साथ रज्जब को भी प्रमुख स्थान देते हैं।
- 2 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), *सुन्दर ग्रंथावली* (भाग-दो), पृ. 689
- 3 पुरोहित हरिनारायण शर्मा (संपादक), *सुन्दर ग्रंथावली* (भाग-दो), पृ. 972
- 4 देवदत्त कौशिक (संपादक), *साहित्यदर्पण-विश्वनाथ,* भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली 1978, पृ. 62, प्राकृत और अपभ्रंश के छन्दों को समझाने के लिये लिखे गये ग्रंथ *'प्राकृतपैंगलम*' में भी मानव-शरीर के साथ काव्य की तुलना मिलती है।
- 5 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (संपादक), *केशव ग्रंथावली* (भाग-एक), हिन्दुस्तान अकादमी, इलाहाबाद, 1954, पृ. 101
- 6 मधुसूदन शास्त्री (संपादक), काव्यप्रकाश- मम्मट, ठाकुरप्रसाद एंड सन्स बुकसैलर, वाराणसी, 1972, पृ. 245 "मुख्यार्थहतिर्दोषो" अर्थात जहाँ काव्य के मुख्य अर्थ का हनन हो या उसे समझने में बाधा हो वही दोष है।
- 7 पुरोहित हरिनारायण शर्मा (संपादक), *सुन्दर ग्रंथावली* (भाग-2), पृ. 738
- 8 दृष्टव्य, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, *हिन्दी साहित्य की भूमिका,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2003, द्विवेदीजी संतों के काव्यशास्त्र पर आधारित कविता करने के ज़्यादा हिमायती नहीं ही थे। वे लिखते हैं, "उनकी (सुन्दरदास की) कविता के बाह्य उपकरण तो शास्त्रीय दृष्टि से कथंचित निर्दोष हो सके थे पर वक्तव्य-विषय का स्वाभाविक वेग, जो इस जाति की सबसे बड़ी विशेषता है, कम हो गया"। 'कविता के बाह्य उपकरण' से द्विवेदीजी का मतलब छन्द-अंलकार में सुन्दरदास की अधिक दिलचस्पी और कविता में उनके प्रयोग से है।
- 9 मोनिका होर्स्टमान, *संत एंड सूफ़ी इन सुन्दरदास पोइट्री,* संकलित रिलिजियस इंटरेक्शन इन मुग़ल इंडिया- संपादक वसुधा डालमिया और मुनीस फ़ारूक़ी, ओ० यू० पी० 2014, पृ. 235
- 10 आचार्य रामचंद्र शुक्ल, *हिन्दी साहित्य का इतिहास*, पृ. 48-50, शुक्ल जी लिखते हैं-"निर्गुणपंथियों में यही एक ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिन्हें समुचित शिक्षा मिली थी और जो काव्यकला की रीति से अच्छी तरह परिचित थे।.....और संतों ने केवल गाने के पद और दोहे कहे हैं परन्तु इन्होंने सिद्धहस्त कवियों के समान बहुत से कवित्त और सवैये रचे हैं....संत तो ये थे ही, पर कवि भी थे।"
- 11 अपनी शोध के दौरान निर्भयनाथजी की सत्संग में जाना हुआ, उनसे चर्चा करने का अवसर मिला। निर्भयनाथजी कनफटे नाथ हैं और राजस्थान के पाली ज़िले में सेसली नामक स्थान पर उनका आश्रम है। अपने क्षेत्र में निर्भयनाथजी भजन गायन और सवैयों के सस्वर पाठ के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने भी सुन्दरदासजी के सवैयों को पहले-पहल सत्सगों में ही सुना। वे सुन्दर विलास का नित्य पाठ करते हैं।
- 12 दृष्टव्य, विनान्द केलवर्ट (संपादक), *निर्गुण भक्ति सागर,* मनोहर, दिल्ली 1991 और धर्मपाल सिंहल (संपादक), *रज्जबदास की सर्वंगी*, दीपक पब्लिशर्स, जालंधर, 1990

- 13 मुक्तानंद काव्यम् (भाग-एक), श्री स्वामीनारायण मंदिर, अहमदाबाद, 2001, पृ. 114-16, सुन्दरदास ने 'वचन विवेक' के माध्यम से जो नया विमर्श शुरू किया उसका पंजाब, राजस्थान और गुजरात के संत समुदायों पर भी प्रभाव पड़ा। स्वामीनारायणी संतकवि मुक्तानंद (18-19 वीं सदी) ने अपने 'विवेक चिंतामणी' नामक ग्रंथ में सुन्दरदास के 'वचन विवेक' और 'नारी निंदा' नामक अंग (जिसमें वे रीति-कविता की आलोचना करते है) का लगभग पुनर्कथन कर दिया है। सुन्दरदास के ग्रंथ 'भुज की ब्रजभाषा पाठशाला' में पढ़ाए जाते थे। लेकिन मुक्तानंद इस पाठशाला से संबंधित नहीं थे, यह बात सुन्दरदास के ग्रंथों की अन्य सम्प्रदायों में प्रसिद्धि की पुष्टि करती है।
- 14 पुरोहित हरिनारायण शर्मा (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग –दो), पृ. 467
- 15 वही, पृ. 737
- 16 पुरोहित हरिनारायण शर्मा (संपादक), *सुन्दर ग्रंथावली* (भाग –दो), पृ. 737
- 17 श्री रामचंद्र मिश्र (संपादक), *काव्यादर्श- दंडी,* चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी,1972, पृ. 14, आचार्य दंडी काव्य की तीन श्रेणियाँ बताते हैं- गद्य, पद्य और मिश्रित तथा ट्रष्टव्य, मधुसूदन शास्त्री (संपादक), *काव्यप्रकाश- मम्मट,* पृ. 30-32, मम्मट शब्द और अर्थ के चमत्कार पर आधारित काव्य की तीन- उत्तम, मध्यम और अधम श्रेणियाँ बताते हैं.
- 18 पुरोहित हरिनारायण शर्मा (संपादक), *सुन्दर ग्रंथावली* (भाग –दो), पृ. 466-7
- 19 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (संपादक), केशव ग्रंथावली (भाग-एक), पृ. 112
- 20 पुरोहित हरिनारायण शर्मा (संपादक), *सुन्दर ग्रंथावली* (भाग- दो), पृ. 439
- 21 *मुक्तानंद काव्यम* (भाग-एक), श्री स्वामिनारायण मंदिर प्रकाशन, अहमदाबाद, 2001, पृ. 114-16
- 22 डा० नेहा बैद, *संतकवि हरिरामदास का काव्यादर्श,* सम्मेलन प्रत्रिका (भाग 18 संख्या 2), संपादक- विभूति मिश्र, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, 2013, पृ. 128
- 23 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग एक), पृ. 197
- 24 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (संपादक), केशव ग्रंथावली (भाग-एक), पृ. 197
- 25 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग एक), सुन्दर ग्रंथावली के संपादक रमेशचंद्र मिश्र ने 'ज्ञान समुद्र' को 'ज्ञान-धारा का रीतिग्रंथ' कहा है।
- 26 संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों और रीति-ग्रंथों में अक्सर इस तरह के सांग-रूपकों का निर्वाह किया जाता है।
- 27 पुरोहित हरिनारायण शर्मा (संपादक), *सुन्दर ग्रंथावली* (भाग- एक), पृ. 6
- 28 रामचरितमानस, 1-37 (जुगति मंजु मनि सीप सोहाई), गीताप्रेस गोरखपुर, 1992
- 29 Andrew Ollett, Language of the Snakes: Prakrit, Sanskrit and the language order of Premodern India, 2015: PhD dissertation, Columbia University
- 30 पुरोहित हरिनारायण शर्मा (संपादक), *सुन्दर ग्रंथावली* (भाग- एक), पृ. 3
- 31 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (संपादक), *केशव ग्रंथावली* (भाग- एक), पृ. 103
- 32 केशवदास अपनी 'छन्दमाला' के दूसरे अध्याय के दो शुरूआती पदों में गणेश और पिंगल की आराधना करते हैं। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (संपादक), केशव ग्रंथावली (भाग-दो), पृ. 449, छन्द शास्त्र में 'न-गण' को शुभ मानने की अवधारणा के लिए दृष्टव्य, भोलाशंकर व्यास (संपादक), प्राकृतपैंगलम, छन्द संख्या 36, प्राकृत ग्रंथ परिषद, अहमदाबाद, 2007, पृ. 15

- 33 पुरोहित हरिनारायण शर्मा (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग-एक), पृ. 10
- 34 श्रीमद् भगवत् गीता, 6: 8, गीताप्रेस गोरखपुर 2007, रमेंशचन्द्र मिश्र द्वारा संपादित सुन्दर ग्रंथावली में इस पद पर संपादक की टिप्पणी भी दृष्टव्य।
- 35 श्रीधरशास्त्री पाठक (संपादक), मुंडक उपनिषद्, 2: 2: 9 शंकर रामचंद्र दाते, पुणे, 1940 रमेंशचन्द्र मिश्र द्वारा संपादित सुन्दर ग्रंथावली में इस पद पर संपादक की टिप्पणी भी दृष्टव्य।
- 36 अपनी एम० ए० थीसिस (कोलम्बिया युनिवर्सिटी) में जस्टिन बैन-हैन पुष्टि मार्गियों के वार्ता साहित्य में भी टीकाओं के माध्यम से शास्त्रसम्मत और पारम्परिक ज्ञान को वल्लभ सम्प्रदाय का मान्यताओं के अनुरूप व्याख्यायित करने की प्रक्रिया को दर्शाते हैं।
- 37 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), *सुन्दर ग्रंथावली* (भाग- एक), पृ. 26
- 38 वही, पृ. 65
- 39 वही, पृ. 41
- 40 पुरोहित हरिनारायण शर्मा (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग-एक), पृ. 33
- 41 जेम्स मैलिन्सन, *रामानंदी त्यागीज़ एंड हठयोग,* पृ. 7, अप्रकाशित लेख
- 42 श्री अगरचंद नाहटा (संपादक), *भक्तमाल राघवदास,* छप्पय 419
- 43 भगवत्तदास शास्त्री (संपादक), *दयालदास रचित भक्तमाल,* रामसनेही साहित्य शोध प्रतिष्ठान, जोधपुर 1980, छप्पय 410
- 44 फ़ील्ड वर्क के दौरान मुझे ज्ञान समुद्र की करीब 81 पांडुलिपियों की जानकारी मिली। कुछेक को मैं स्वयं देख सका। ये पांडुलिपियाँ 17वीं से 20वीं सदी तक राजस्थान, पंजाब, गुजरात और उत्तर प्रदेश के विस्तृत भू-भाग में फैली हुई हैं। पोथीखाना, सिटी पैलेसे जयपुर में संगृहीत ज्ञान समुद्र की प्रति पर जयपुर राजदरबार और मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब की शाही सीलें लगी हुई हैं। भुज (कच्छ राज्य, गुजरात) के आईना महल संग्रहालय में ज्ञान समुद्र की प्रति देखने का अवसर भी मुझे मिला। यह प्रति कच्छ के महाराजा देसलजी के पठन हेतु बनाई गई थी, जिसका चित्र इस शोध-प्रबंध के अध्याय तीन में दिया गया है।
- 45 गुरुमुखी में लिखित 'ज्ञान समुद्र' की एक प्रति (1859 ई.) पंजाब डिजिटल लाइब्रेरी में संगृहीत है। ज्ञान समुद्र के अतिरिक्त सुन्दरदास का 'सवैया ग्रंथ', 'गुरु सम्प्रदाय ग्रंथ' और 'अद्भुत्त उपदेश ग्रंथ' भी 'पंजाब डिजिटल लाइब्रेरी' में संगृहीत हैं।
- 46 Francoise Mallison, The teaching of Braj, Gujarati and Bardic Poetry at the Court of Cutch, In Sheldon Pollock, ed., Forms of Knowledge in Early Modern Asia, Duke University Press, 2011, दलपतराम डाह्याभाई (1820- 1898 ई.) को गुजराती में आधुनिकता और आरंभिक आधुनिकता के मिलन बिंदु पर स्थित कवि माना जाता है। दलपतराम भुज की ब्रजभाषा पाठशाला के ही छात्र थे और इनके लेख भुज की ब्रजभाषा पाठशाला संबंधी प्रामाणिक जानकारी, पाठ्यक्रम आदि के लिए प्राचीन स्रोत हैं। पाठ्यक्रम की जो सूची दलपतराम डाह्याभाई देते हैं उसमें ज्ञानसमुद्र का महत्व इसलिये बताया गया है कि इसमें विभिन्न प्रकार के छन्द हैं। अर्थात भुज काव्यशाला में छन्दों को 'ज्ञान समुद्र' से पढ़ाया जाता होगा।
- 47 कृष्ण कुमार कौशिक, *सुन्दरदास और उनका काव्य,* साहित्य मंदिर, दिल्ली, 1995 तथा हंसराज सिंह, *दादू संप्रदाय और संत सुन्दरदास (छोटे),* कला प्रकाशन, वाराणसी, 1988

- 48 Alessandro Battistini, Chitrakavya in Manuscripts: the case of Anandavardhana's Devishataka, कृति रक्षण (राष्ट्रीय पांडुलिपि मिशन (नई दिल्ली) की द्वैमासिक पत्रिका, Vol. 9, Nos. 5 April-May 2014) संपादक – मृण्मय चक्रबर्ती, पृ. 7-11, महाकवि भोज ने अपने 'सरस्वतीकंठाभरण' (2.109) में चित्र-काव्य के छह लक्षण माने हैं-(जहाँ स्वर, व्यंजन, उच्चारण, विभिन्न आकृतियों, आकृतियों के अनुसार कविता करने, और पढ़ने के तरीके का विधान होता है, वह चित्र-काव्य है)
- 49 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग- दो), पृ. 1125
- 50 पं. थानेशचंद्र उप्रैति (संपादक), *मम्मटकृत काव्यप्रकाश:,* परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली 2003, पृ. 74
- 51 डॉ. नगेन्द्र (संपादक),*आनंदवर्धनाचार्य विरचित: ध्वन्यालोक:,* ज्ञानमंडल लिमिटेड,वाराणसी, 1998,पृ. 309
- 52 Alessandro Battistini, Chitrakavya in Manuscripts: the case of Anandavardhana's Devishataka, कृति रक्षण (राष्ट्रीय पांडुलिपि मिशन (नई दिल्ली) की द्वैमासिक पत्रिका, Vol. 9, Nos. 5 April-May 2014) संपादक – मृण्मय चक्रबर्ती, पृ. 7-11, आनंदवर्धन ने चित्र-काव्य के सभी भेदों का निर्वाह करते हुए अपने देवीशतक की रचना की है। देवी की प्रशस्ति के ग्रंथ देवीशतक में आनंदवर्धन ने देवी की गौरी, पार्वती, भद्रकाली, सरस्वती, दुर्गा, भारती, चंडी, तारा आदि रूपों में उपासना की है। देवी शतक के अंतिम श्लोक में आनंदवर्धन कहते हैं कि स्वयं देवी ने उन्हें सपने में आकर इस ग्रंथ को बनाने का आदेश दिया।
- 53 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग-दो), पृ. 1137
- 54 वही, पृ. 1137
- 55 दृष्टव्य, कठोपनिषद् (सानुवाद शांकरभाष्य सहित), द्वितीय अध्याय, तृतीया वल्ली, (संसार रूप अश्वत्थ वृक्ष), गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2071, पृ. 131
- 56 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग-दो), पृ. 772
- 57 मुंडक उपनिषद् में यह दृष्टांत आया है- द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तरोन्य पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्त्रन्यो अभिचाकशीति।। तृतीय मुंडकम्, प्रथम खंड मुण्डकोपनिषत्, मंत्रपुष्पम्, परिष्कर्ता- स्वामी देवरूपानंद, रामकृष्ण मठ, मुंबई 2014, पृ. 193
- 58 वही, पृ. 1135-36
- 59 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग-दो), पृ. 1144
- 60 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), *सुन्दर ग्रंथावली* (भाग एक), पृ. 19
- 61 पं. सुधाकर पांडेय (संपादक), *जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' कृत काव्यप्रभाकर,* नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, नवसंपादित प्रथम संस्करण 2028, पृ. 48
- 62 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग-एक), पृ. 304
- 63 aही, पृ. 307
- 64 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग-एक), पृ. 307
- 65 वही, पृ. 315, दृष्टव्य इस पद पर संपादक की टिप्पणी।

- 66 ऐलिसन बुश, पोइट्री आफ़ किंग्स, पृ. 44, छन्दमाला (1602 ई.) देशभाषा काव्य का पहला छन्द आधारित रीतिग्रंथ है। छंदमाला के आधे छंदों के उदाहरण रामचंद्रिका (1601ई.) से शब्दश: लिए गए हैं। जिससे इस धारणा को बल मिलता है कि छन्दमाला और रामचंद्रिका को केशवदास ने साथ-साथ पढ़ने के लिए लिखा होगा।
- 67 गोविन्द चातक (संपादक), *पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के श्रेष्ठ निबन्ध* (केशवदास और उनकी रामचंद्रिका), तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978, पृ. 119, वेणीमाधवदास के मूल गोसाईंचरित में एक प्रसंग का उल्लेख है। जिसके अनुसार केशवदास जब तुलसीदास से मिलने गये तो तुलसी ने उन्हें "प्राकृत कवि" अर्थात राम को छोड़कर दुनियावी राजाओं की प्रशस्ति करने वाला कहकर संबोधित किया। केशवदास उलटे पांव वापस चले गए। फिर क्या था केशवदास ने एक ही रात में रामचंद्रिका लिख डाली। तुलसी की भक्ति को केशवदास की पंडिताई का यही उत्तर था।
- 68 दृष्टव्य, दयाशंकर शुक्ल, हिन्दी का समस्यापूर्ति-काव्य (अध्याय- पाँच), गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, 1967, मुग़ल बादशाह अकबर से लेकर भारतेन्दु युग तक राज-दरबारों और आश्रयदाताओं के यहाँ समस्यापूर्ति काव्य का प्रचलन था जिससे मुक्तक रचना को बढ़ावा मिलता था, यह काव्य मनोरंजन का प्रधान साधन हुआ करता था।
- 69 नामवर सिंह, *इतिहास और आलोचना*, पृ. 129, नामवरसिंह लिखते हैं कि कबीर ने प्रचलित ऐहिक गीतों को आध्यात्मिक छौंक देकर ज्यों का त्यों अपना लिया। सूरदास के पदों में अनेक प्रसंगधर्मी स्थल ऐसे हैं जो ब्रज प्रदेश की लोक वार्ताओं की ओर संकेत करते हैं। वे आगे लिखते हैं कि जायसी (पद्मावत का बारहमासा) और तुलसी (बरवै) का काव्य अवधखंड की लोकवार्ताओं की सुक्ष्म देन को प्रतिध्वनित करता है।
- 70 भोलाशंकर व्यास (संपादक), *प्राकृतपैंगलम* (भाग 1,2), प्राकृत ग्रंथ परिषद्, अहमदाबाद, 2007, पृ. 72-3
- 71 वही, पृ. 404
- 72 वही, पृ. 391
- 73 गोपाल नारायण बहुरा (संपादक), मानचरितावली, सवाई मानसिंह संग्रहालय ट्रस्ट, सिटी पैलेस जयपुर, 1990, पृ.-2, अकबर के मनसबदार राजा मानसिंह के दरबारी कवि अमृतराय जब अपने आश्रयदाता के लिए 'मानचरित' (रचनाकाल 1585 ई.) नामक ग्रंथ लिखते हैं तो पहले 'चंद बलिद्दिया' कवि को याद करते हैं। यह ब्रजभाषा की प्रबंधकाव्य परम्परा पर कवि चंद के प्रभाव को दिखाता है।
- 74 हजारीप्रसाद द्विवेदी और नामवर सिंह (संपादक), संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद 1998, पृ. 197, पुरातन प्रबंध संग्रह (15वीं सदी) में मिले कैमास-वध संबंधी छप्पयों, जो पृथ्वीराज रासो में भी समाहित हैं, के आधार पर हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और नामवरसिंह ने पृथ्वीराज चौहान से जुड़े काव्य के 15वीं सदी में उपस्थित होने की बात कही है।
- 75 दृष्टव्य, मोतीलाल मेनारिया, राजस्थानी भाषा और साहित्य, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2006 और नारायणसिंह भाटी, प्राचीन डिंगल गीत साहित्य, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर 1989, राजस्थानी भाषा और साहित्य के इतिहासकार मोतीलाल मेनारिया और नारायणसिंह

भाटी डिंगल (मारवाड़ी) साहित्य का उद्भव और विकास भक्तिकाल से पहले मानते हैं। भक्ति के उदय से पहले का यह साहित्य ज़्यादातर आश्रयदाताओं की प्रशस्ति का होता था।

- 76 अबुल फ़ज़ल (एच० बेवेरिज (अनुवादक), *द अकबरनामा आफ़ अबुल फ़ज़ल,* भाग-3, पृ. 518 और राजस्थान के दरबारी इतिहासकार मुहतां नैणसी (बद्रीप्रसाद साकरिया (संपादक), *मुहताँ नैणसी री ख्यात* (भाग-एक), पृ. 256, दोनों यह उल्लेख करते हैं कि पृथ्वीराज राठौड़ अकबर के मनसबदार थे। इनको गागरौन में एक जागीर मिली हुई थी।
- 77 नरोत्तमदास स्वामी (संपादक), *क्रिसन-रुकमणी-री वेली (राठौड़ पृथ्वीराज-री कही),* राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 1998, पृ. 155
- 78 नरेन्द्र झा, भक्माल-पाठानुशीलन एवम् विवेचन, छप्पय 133, अनुपम प्रकाशन, पटना, 1978, पृ. 48 तथा राघवदास कृत भक्माल, छप्पय 452, पृ. 209 और *दो सो बावन वैष्णवन की वार्ता*, भाग-तीन, शुद्धाद्वैत अकादमी, कांकरोली, 1951-3, पृ. 249-52
- 79 कवि वृंद का यह दोहा प्रसिद्ध है जिसमें अकबर अपने गुज़रे हुए नवरत्नों को याद करते हैं *पीथल सू मजलिस गई तानसेन सू राग हंसबो रमबो बोलबो गया वीरवर साथ।* दृष्टव्य, रुपर्ट स्नेल, *ब्रज इन ब्रीफ़* - <u>http://hindiurduflagship.org/assets/pdf/Braj-</u> <u>in-Brief.pdf</u>
- 80 ब्रजनारायण पुरोहित (संपादक), *वचनिका अचलदास खींची री,* नवयुग ग्रंथ कुटीर, बीकानेर, 1976, पृ. 7
- 81 मोतीलाल मेनारिया, राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. 53, 'वयण सगाई' डिंगल का प्रधान 'शब्दालंकार' है। इसके अनुसार छन्द के किसी चरण का प्रारम्भ जिस वर्ण से हुआ हो उस चरण का अंतिम शब्द भी उसी वर्ण से शुरू होता है। उदाहरण के लिए इस अध्याय की संदर्भ संख्या '69' को देखा जा सकता है। 'वयण सगाई' तीन प्रकार (उत्तम, मध्यम और अधम) की होती हैं।
- 82 मोतीलाल मेनारिया, *राजस्थानी भाषा और साहित्य*, पृ. 54-6, डिंगल में तीन तरह के दोहे (बड़ौ, तुंवेरी और खोड़ौ) पारम्परिक दोहे में मात्राओं के कुछ हेर-फेर से बनाए गए हैं। सोरठे को भी डिंगल में दोहा ही कहा जाता है। छप्पय को भी तीन तरह का माना जाता है, शुद्ध कवित्त (जो ब्रज के समान है), कवित्त (छप्पय) और डोढ़ौ कवित्त।
- 83 शीघ्र प्रकाश्य, दलपत राजपुरोहित, मेकिंग वार कम अलाइव- डिंगल पोइट्री एंड पद्माकर्स हिम्मतबहादुर बिरुदावली, संकलित - टेक्स्ट एंड ट्रेडिशन इन अर्ली माडर्न नॉर्थ इंडिया, (संपादक, हॉली जॉन, अंशु मलहोत्रा और टाइलर विलियम्स), ओ. यू. पी. नई दिल्ली, 2018, डिंगल काव्य के ब्रज और अवधी पर पड़े प्रभाव के विस्तृत अध्ययन के लिए दृष्टव्य।
- 84 हजारीप्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन धर्म साधना, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1962, पृ. 41
- 85 वही, पृ. 125
- 86 सुन्दरदास ने कुल बारह अष्टक लिखे हैं। पांडुलिपि परम्परा में इन अष्टकों की अलग-अलग पांडुलिपियाँ भी मिलती हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि ये अष्टक स्वतंत्र रूप में भी पढ़े जाते थे। सुन्दरदास के अष्टकों के विस्तृत अध्ययन के लिए दृष्टव्य इस शोध-प्रबंध का छटा अध्याय।
- 87 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग-एक), पृ. 81

- 88 वही, पृ. 82
- 89 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग-दो), पृ. 919
- 90 पुरोहित हरिनारायण शर्मा (संपादक),*सुन्दर ग्रंथावली* (भाग-एक), पृ. 126-40
- 91 नन्नूलाल खंडेलवाल, *संत सुंदरदास: लोकोक्ति मुहावरा कोश,* (दृष्टव्य-प्राक्कथन), भावना प्रकाशन, दिल्ली 1996
- 92 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग-दो), पृ. 705
- 93 वही, पृ. 746
- 94 **वही**, पृ. 783
- 95 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), *सुन्दर ग्रंथावली* (भाग-एक), पृ. 188
- 96 अर्थात ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है—ऐसा मेरा मत है। क्योंकि वह मद्गत मन-बुद्धिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम गतिस्वरूप मुझमें ही अच्छी प्रकार स्थित है। श्रीमद्भगवत्गीता, अध्याय-7, श्लोक-18, पृ. 103, गीताप्रेस गोरखपुर, 2064 विक्रमी
- 97 दृष्टव्य, शार्लेट वाडविल, 'बारहमासा इन इंडियन लिट्रेचर्स,' मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1986, शार्लेट वाडविल ने बारहमासों पर अपनी बहुचर्चित पुस्तक में मारू-गुर्जर अपभ्रंश (पुरानी गुजराती या मारवाड़ी), बांग्ला, मराठी, डिंगल, ब्रज, अवधी आदि भाषाओं में बारहमासा की परम्परा का अध्ययन किया है। राजमती के नेमिनाथ के प्रति विरह से जुड़े, जैन मुनियों द्वारा लिखे गए, मारू-गुर्जर (पुरानी गुजराती-मारवाड़ी) के बारहमासों को शार्लीट वाडविल देशभाषा के सर्वाधिक प्राचीन बारहमासे कहती हैं।
- 98 दृष्टव्य, John Hawley, 'Yoga and Viyoga: Simple religion in Hinduism', in The Harvard theological review Vol. 74, No.1 (Jan. 1981, pp. 1-20), सूरदास के विरह से जुड़े पदों पर चौमासा लोकगीतों और बारहमासा परम्परा के प्रभाव को जानने के लिए यह आलेख दृष्टव्य । जायसी आदि सूफ़ी कवियों के अलावा मीराबाई के माने जाने वाले बारहमासा का उल्लेख शार्लोट वाडविल अपनी किताब '*बारहमासा इन इंडियन लिट्रेचर्स*'में करती हैं ।
- 99 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), *सुन्दर ग्रंथावली* (भाग-एक), पृ. 317
- 100 वही, पृ. 320
- 101 वही, पृ. 273
- 102 वही, पृ. 276
- 103 दृष्टव्य, म० बजरंगदास शास्त्री (संपादक), सवैया प्रंथ (सुन्दर विलास), परिशिष्ट एक, श्री दादूवाणी परिषद्, नरैना 2007 ई., सुन्दरदास के विपर्यय के अंगों पर तीन टीकाएँ लिखी गईं। इनमें से दो हस्तलिखित ग्रंथों में मिलती है और तीसरी व सबसे लोकप्रिय टीका पं० श्री पीताम्बरजी (अहमदाबाद) की पीताम्बरी टीका है।
- 104 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग-दो), पृ. 843
- 105 विस्तृत टीका के लिए दृष्टव्य, रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग दो), पृ. 843, सुन्दरदास के इस पद में जिन प्रतीकों का प्रयोग हुआ है उनके समानार्थी गोरखनाथ, कबीर, हरिदास निरंजनी, रज्जब आदि के पद देखने के लिए भी इस पद पर रमेशचंद्र मिश्र की टिप्पणी दृष्टव्य है।

106 रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), सुन्दर ग्रंथावली (भाग-एक), पृ. 278

- 107 दृष्टव्य, नेहा बैद (संपादक), छन्द रतावली, हरिराम दास,राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2011 हरिराम दास निरंजनी 1738 ई. (1795 वि.) को छन्द रतावली का लिखा जाना बताते हैं। अपने पीएच.डी. शोध प्रबंध में टाइलर विलियम्स ने निरंजनी संप्रदाय में शास्त्र, पुराण तथा छन्द अलंकारों पर रचित ग्रंथों का अध्ययन किया है।
- 108 दृष्टव्य, सूरतराम दादू (संपादक), श्री विचार सागर (संपादकीय), संत साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, खेतड़ी, 1994, बूँदी नरेश रामसिंह, जो दादूपंथियों से काफ़ी प्रभावित थे, ने निश्लदास को बूँदी बुलवाया था। यह इस बात की पुष्टि करता है कि आरंभिक आधुनिक काल में राजाओं के जीवन में धर्म और अध्यात्म चर्चा का बहुत महत्व होता था। राजा संतों को भी प्रसंन्न होकर वृत्ति इत्यादि भी देते थे।
- 109 वही, पृ. 20
- 110 दृष्टव्य, रूपर्ट स्नैल (1994), इमरे बंगा (1999), हायदी पाउल्स (2005) और ऐलिसन बुश (2006, 2011)